प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

जीवन में स्वयं के तथ्यों का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी चर्चा को शुरू करना चाहूंगा।

जैसे आप आज यहां इकट्ठे हैं, ऐसे ही एक चर्च में एक रात बहुत से लोग इकट्ठे थे। एक साधु उस रात सत्य के ऊपर उन लोगों से बात करने को था। सत्य के संबंध में एक अजनबी साधु उस रात उन लोगों से बोलने को था। साधु आया, उसकी प्रतीक्षा में बहुत देर से लोग बैठे थे। लेकिन इसके पहले कि वह बोलना शुरू करता उसने एक प्रश्न, एक छोटा सा प्रश्न वहां बैठे हुए लोगों से पूछा।

उसने पूछा कि क्या आप लोगों में से किसी ने ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है? जिन लोगों ने पढ़ा है वे हाथ ऊपर उठा दें। उस हॉल में जितने लोग थे करीब-करीब सभी ने हाथ ऊपर उठा दिए, केवल एक बूढ़ा आदमी हाथ ऊपर नहीं उठाया। उन सभी लोगों ने स्वीकृति दी कि उन्होंने ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय पढ़ा है। वह साधु जोर से हंसने लगा और उसने कहाः मेरे मित्रो, तुम्हीं वे लोग हो जिनसे सत्य पर बोलना बहुत जरूरी है। क्योंकि ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय है ही नहीं। वैसा कोई अध्याय ही नहीं है।

और उस हॉल में वे सारे लोग हाथ ऊपर उठाए हुए थे कि उन्होंने उस अध्याय को पढ़ा है। सिर्फ एक आदमी हाथ नीचे किए बैठा था। साधु बोल चुका और जब सारे लोग जाने लगे तो उसने उस बूढ़े आदमी को जाकर पकड़ा और कहाः मैं हैरान हूं, तुम जैसा आदमी चर्च में क्यों आया? मैंने आज तक सत्य और चर्च का कोई संबंध नहीं देखा। तुमने हाथ नहीं ऊपर उठाया तो मैं हैरान हो गया। बाकी लोग झूठे ही हाथ उठा रहे थे, यह तो ठीक था। इसमें कोई आश्चर्य की बात न थी। लेकिन तुम्हें बिना हाथ उठाए देख कर मैं हैरान हो गया हूं! तुमने हाथ क्यों नहीं उठाया? मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं। अगर तुम जैसे एकाध लोग भी जमीन पर शेष रहें तो धर्म नष्ट नहीं होगा।

उस आदमी ने कहाः महानुभाव! आप समझने में भूल कर रहे हैं, मेरे हाथ में दर्द है इसलिए मैं ऊपर नहीं उठा सका। हाथ तो मैं भी ऊपर उठाना चाहता था, मजबूरी थी, माफ करें। दुबारा आप आएंगे और हाथ उठवाएंगे, तब तक मैं भी स्वस्थ हो जाऊंगा और हाथ उठाऊंगा।

सत्य पर यहां भी इन आने वाले दिनों में कुछ थोड़ी सी बातें मुझे आपसे कहनी हैं। सो मुझे भी खयाल आया कि आपसे हाथ उठवा लूं, लेकिन फिर यह डर लगाः हो सकता है किसी के हाथ में तकलीफ हो, और वह न उठा पाए, और परेशान हो। इसलिए मैं हाथ तो नहीं उठवाऊंगा, और अब इस कहानी को कह देने के बाद हाथ उठना थोड़ा मुश्किल भी है। लेकिन हर एक से यह कहूंगा--अपने भीतर वह हाथ जरूर उठा ले, क्योंकि जो आदमी जीवन की खोज में निकला हो, अगर वह अपने भीतर सच्चा नहीं हो सकता है तो उसकी कोई खोज कभी पूरी नहीं होगी।

जो आदमी धर्म को या परमात्मा को, जीवन के अर्थ को जानने के लिए उत्सुक हुआ हो, अगर वह अपने प्रति थोड़ा सच्चा नहीं है तो उसकी खोज व्यर्थ ही चली जाएगी। उसका श्रम व्यर्थ चला जाएगा। फिर चाहे वह मंदिरों में जाए, और चर्चों में और मस्जिदों में, और चाहे वह कहीं भी भटके, तीर्थों में और पहाड़ों पर--अगर वह भीतर अपने प्रति ही झूठा है तो वह जहां भी जाएगा, वहां सत्य नहीं पा सकेगा।

सत्य की खोज का पहला चरण अपने प्रति सच्चा होना है। और हमें याद ही नहीं रहा है कि हम अपने प्रति भी सच्चे हों। शायद हमें पता भी नहीं कि अपने प्रति सच्चे होने का क्या अर्थ है? और यह झूठ कोई एक आदमी बोलता हो, ऐसा नहीं है। यह झूठ कोई एक पीढ़ी बोलती हो, ऐसा नहीं है। किसी एक सदी में आकर आदमी अपने प्रति झूठा हो गया हो, ऐसा भी नहीं है।

हजारों साल से झूठ पाले और पोसे गए हैं। और वे इतने पुराने हो गए हैं कि उन पर आज शक करना भी असंभव हो गया है। बहुत दिनों तक झूठ जब प्रचारित होते हैं तो वे सत्य जैसे प्रतीत होने लगते हैं। हजारों-हजारों साल तक जब किसी झूठ के समर्थन में बातें कही जाती हैं और हजारों लोग उसका उपयोग करते हैं तो धीरे-धीरे यह बात ही भूल जाती है कि वह झूठ है, वह सत्य प्रतीत होने लगती है।

तो यह जरूरी नहीं है कि जो झूठ हमारे जीवन को घेरे होती हैं वे हमारे ईजाद किए हों। हो सकता है, परंपराओं ने हजारों वर्षों में उनको विकसित किया हो। और क्योंकि हमने उन्हें विकसित नहीं किया होता है, इसलिए हमें पता भी नहीं होता है कि हम किसी झूठ का समर्थन कर रहे हैं। हमें याद भी नहीं होता है, हमें खयाल में भी यह बात नहीं होती है। और जब तक यह बात खयाल में न आ जाए, जब तक हम अपने भीतर झूठ के सारे पर्दों को न तोड़ दें तब तक, तब तक हम न जान सकेंगे कि क्या है सत्य?

और सत्य को जो न जान सकेगा, उसके जीवन में कभी स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं हो सकती। और सत्य को जो न जान सकेगा, उसके जीवन में कभी आनंद के झरने फूट नहीं सकते। सत्य को जो न जान सकेगा, उसका जीवन कभी एक संगीत नहीं बन सकता है। वह दुख में जीएगा और दुख में मरेगा। अर्थहीनता में व्यर्थ ही उसका समय अपव्यय होगा। उसका जीवन चुक जाएगा और वह जीवन को जानने से वंचित रह जाएगा।

लेकिन हम सत्य को जरूर जानना चाहते हैं। इसलिए हम उन द्वारों पर भटकते हैं जहां हमें खयाल है कि सत्य मिल सकेगा। हम जरूर ही प्यासे हैं, नहीं तो मंदिरों और मस्जिदों में कौन जाता? हमारे भीतर जरूर आकांक्षा है। लेकिन आकांक्षा अकेली काफी नहीं है, प्यास अकेली काफी नहीं है। हमें अपने भीतर उन दीवालों को तोड़ देना होगा जो हमने खुद असत्य की खड़ी कर ली हैं, तभी सत्य से हमारा कोई सम्पर्क हो सकता है। मैंने कहा कि कोई असत्य जो हमें घेरे हुए है, हमारी आज की ईजाद नहीं है, पुरानी कथा है यह। हर पीढ़ी करीब-करीब उन्हीं असत्यों को फिर से दोहराती है, जिनको पिछली पीढ़ी ने दोहराया था। एक रिपीटीशन, एक पुनरुक्ति है जो चलती चली जाती है।

मैंने सुना है, एक रात एक बड़े नगर में एक छोटे से गांव का रहने वाला एक निवासी आया। यद्यपि वह छोटे से गांव में रहता था, लेकिन बड़े नगर में जब युवा था तो वह भी शिक्षा लेने आया था। उसके पड़ोस का एक लड़का आज भी उसी विद्यालय में, उसी छात्रावास में था, जिसमें वह कभी था। रात उसे ख्याल आया कि मैं जांऊ और देखूं छात्रावास बदल गए होंगे, विद्यालय बदल गए होंगे। मैं जब पढ़ता था उस बात को बीते तो तीस वर्ष हो गए। सब बदल गया होगा। वह गया और उसने उस दरवाजे पर जाकर, द्वार पर दस्तक दी। जिसमें उसके गांव का एक लड़का पढ़ता था और रहता था। दरवाजा खोला गया, वह भीतर गया। और उसने जाकर उस युवक को कहा कि बेटे मैं यह देखने आया हूं, तीस वर्ष में तो सब कुछ बदल गया होगा।

मकान नये हो गए थे, विद्यालय का भवन बहुत बड़ा हो गया था। जहां थोड़े से विद्यार्थी थे, वहां बहुत विद्यार्थी थे। रास्ते सुंदर बन गए थे, बगीचे आबाद हो गए थे। सब कुछ ऐसे बदला हुआ था। वह भीतर गया और उसने युवक की टेबल पर जाकर किताब उठाई, सामने ही बाइबिल रखी हुई थी। उसने बाइबिल का ऊपर

का पुट्ठा उघाड़ा, भीतर बाइबिल नहीं थी, भीतर एक उपन्यास था। युवक घबड़ा गया, उसने कहाः यह किताब मेरी नहीं है, मैं तो किसी पड़ोसी से मांग कर लाया था। यह क्या बात है?

वह बूढ़े आदमी ने कहाः मत घबड़ाओ, हम भी ऐसी किताबें बाइबिल के कवर में छिपा कर रखते थे, दि ओल्ड स्टोरी। वही पुरानी कहानी है, इसमें घबड़ाने की कोई भी बात नहीं है। और उसने चारों तरफ नजर डाली और सामने ही अलमारी थी कपड़ों की। उसके दरवाजे को खोला, देख कर वह हैरान हो गया। दरवाजे को खोलते ही उस अलमारी में एक लड़की छिपी हुई खड़ी थी, वह युवक बोलाः माफ करिए, यह मेरे दूर के रिश्ते की बहन है, आई थी मुझसे मिलने।

उसने कहाः बिल्कुल घबड़ाओ मत। हम भी लड़कियों को यहीं छिपा कर खड़ा करते थे, दि ओल्ड स्टोरी। वही पुरानी कहानी है। वह बूढ़ा लौट आया। गांव वापस जाकर लोगों ने उससे पूछा, क्या देख कर आए हो? उसने कहा कि मैं बहुत हैरान होकर आया हूं। जो मैंने देखा--मकान बदल गए, रास्ते बदल गए, बगीचे नये हो गए, लेकिन कहानी पुरानी की पुरानी है। आदमी वही का वही है!

हम भी बाइबिल के कवर में छिपा कर किताबें रखते थे। वे किताबें जिनका बाइबिल से कोई नाता नहीं, जो बाइबिल की दुश्मन हैं। वे ही किताबें मैंने नये लड़के के पास भी देखीं। वही मैं देख कर आया हूं जो मेरी जिंदगी में था तीस वर्ष पहले, वही आज भी है।

लेकिन ये बूढ़ा आदमी बहुत हिम्मत का आदमी रहा होगा। बूढ़े आदमी यह बात कभी स्वीकार नहीं करते हैं कि आदमी वैसे का वैसा है। इसलिए नहीं कि आदमी बदल गया, बल्कि इसलिए कि वे भूल जाते हैं कि जवानी में वे कैसे थे? इसलिए नहीं कि आदमी दूसरा हो गया है, बल्कि इसलिए कि वे बहुत दूसरे तरह के थे। इस तरह का भ्रम और खयाल वे पैदा कर लेते हैं, अन्यथा सच्चाइयां एक ही जैसी हैं।

हजारों वर्षों से आदमी पुनरुक्ति कर रहा है। कोई नई पीढ़ी में नया आदमी पैदा नहीं हो जाता--पुरानी बीमारियां होती हैं, पुराने रोग होते हैं, पुरानी बातें होती हैं। सब पुराना होता है। हम भी जिन असत्यों में घिरे हुए हैं, वे कोई नये नहीं हैं। हजारों वर्षों से वे असत्य चल रहे हैं। एक आदमी के ऊपर उनकी ईजाद का जिम्मा नहीं है, पीढ़ियों दर पीढ़ियों ने उनको विकसित किया है। और इसलिए एक-एक आदमी को यह पता भी नहीं चलता कि वह किन चीजों से बंधा है। वह सच है या झूठ?

जब एक मंदिर के सामने हम हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं तो जो आदमी हाथ जोड़ कर खड़ा है, उसने इस मंदिर को नहीं बनाया। और जिस भगवान के सामने वह हाथ जोड़ कर खड़ा है, उसने इसको गढ़ा भी नहीं। उसे तो सिर्फ बपौती में ये मंदिर मिला, और ये भगवान मिले हैं। और अनजाने क्षणों में बचपन में ही उसे सिखा दिया गया है--नमस्कार करना, और पूजा, और प्रार्थना। वह कर रहा है।

उसे कोई भी पता नहीं है कि जिस मंदिर के सामने वह खड़ा है, वह सत्य का मंदिर है या असत्य का। उसे यह कुछ भी पता नहीं कि जिस परमात्मा को नमस्कार कर रहा है, वह परमात्मा है भी, या कि खुद कुछ लोगों की कल्पना है। उसे यह भी पता नहीं है कि वह जो कर रहा है उस करने में कोई अर्थवत्ता भी है, या वह व्यर्थ है? उसने तो केवल स्वीकार कर लिया है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूंः पहली बात जो आदमी समाज और भीड़ के द्वारा कही गई बातों को बिना सोचे समझे स्वीकार कर लेता है, वह आदमी असत्य के पक्ष में खड़ा हो रहा है।

सत्य के पक्ष में जिसे खड़ा होना है, उसे इतना अंधे स्वीकार में नहीं पड़ना चाहिए। उसकी आंखें खुलीं होनी चाहिए। सोच-विचार सजग होना चाहिए। तर्क सतेज होना चाहिए। उसका चित्त स्वीकृति के लिए

चुपचाप राजी नहीं हो जाना चाहिए। उसके भीतर विचार और संदेह का विकास होना चाहिए, तो ही वह बच सकेगा। अन्यथा, अन्यथा कुछ असत्य उसे पकड़ लेंगे और उनमें घिर जाएगा।

और असत्यों में घिर जाना इतना संतोषदायी है जिसका कोई हिसाब नहीं है। असत्य में घिर जाना इतनी तृप्ति देता है जिसका कोई हिसाब नहीं है। सत्य को पाना तो आरडुअस है, सत्य को पाना तो एक तपश्चर्या है, सत्य को पाना तो एक श्रम है। असत्य को, असत्य को तो एक निद्रा में भी हम स्वीकार कर ले सकते हैं। न कोई श्रम है, न कोई तप है, सिर्फ हमारी स्वीकृति चाहिए। और स्वीकृति अगर हमारे अहंकार को तृप्ति देती हो, संतोष देती हो तब तो कहना ही क्या है।

अगर मैं आपसे कहूंः आत्मा अमर है। तो आपका मन एकदम मानने को राजी हो जाता है। इसलिए नहीं कि आपको मैंने जो कहा उसके सत्य की झलक मिल गई, बल्कि इसलिए कि आपका मन मरने से डरता है। मृत्यु का भय है इसलिए आत्मा की अमरता को स्वीकार करने को कोई भी राजी हो जाता है। यह आत्मा की अमरता को स्वीकार करने में कोई सत्य का अनुभव हुआ, ऐसा नहीं है। बल्कि हमारे भीतर मृत्यु का जो भय था उसको छिप जाने के लिए ओट मिल गई। हम अभय हो सकते हैं इस बात को मान कर कि आत्मा अमर है, मरना होने ही वाला नहीं है।

इसलिए जो लोग जितना मौत से डरते हैं, जितने भयभीत होते हैं, उतना ही आत्मा की अमरता के विश्वासी हो जाते हैं। जो कौम जितनी मृत्यु से भयभीत होती है, उतनी ही धार्मिक हो जाती है। यह धर्म असत्य है। क्योंकि भय से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का संबंध हैः अभय से। फीयर से, भय से धर्म का क्या नाता है? धर्म का संबंध हैः अभय से, फीयरलेसनेस से। लेकिन हमारी यह स्वीकृतियां हमारे भय पर खड़ी होती हैं। जिन असत्यों में हम घिरते हैं उनसे कुछ कंसोलेशंस मिलते हैं, कुछ सांत्वना मिलती हैं।

एक परिवार में कोई चल बसता है और हम उससे जाकर कहते हैंः आत्मा अमर है, रोओ मत, घबड़ाओ मत। बड़ा संतोष मिलता है, बड़ी सांत्वना मिलती है। और यह जो लोग कह रहे हैं, कल इनके घर में कोई चल बसेगा, और ये भी रोएंगे। और जिसके घर में इन्होंने जाकर समझाया था, वह इनके घर में आकर समझाएगा कि आत्मा अमर है--घबड़ाओ मत, रोने की क्या बात है, शरीर ही मरता है। इन्होंने उसे जाकर सांत्वना दी थी, वह इन्हें आकर सांत्वना देगा। न उसे आत्मा की अमरता का कोई पता है, और न इन्हें। लेकिन आत्मा की अमरता एक संतोष बन गई, एक सांत्वना बन गई। और तब इस असत्य से चिपटे रहने का हमारा मन हो जाता है।

लेकिन जो आदमी ऐसे असत्यों से चिपट जाता है, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है। मैं ये कह रहा हूं कि बिना जाने इस तरह की बातों से जो चिपट जाता है, वह असत्य से चिपट रहा है। जान कर, देख कर, समझ कर, अनुभव से जिसके जीवन में यह प्रतीतियां उपलब्ध होती हैं, वह सत्य को उपलब्ध हो जाता है। हमारी अप्रोच, हमारी पहुंच, हमारी दृष्टि अगर अंधे स्वीकार की है तो हम कभी भी असत्य के ऊपर नहीं उठ सकते। और न केवल हम जीवन और जगत के संबंध में असत्यों को स्वीकार कर लेते हैं, हम अपने संबंध में भी असत्यों को स्वीकार कर लेते हैं।

सुखद हैं वे असत्य। बड़े प्रीतिकर मालूम होते हैं। आदमी से कहो कि भगवान ने मनुष्य को सभी प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है। सभी मनुष्य एकदम राजी हो जाते हैं। अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। लेकिन किन्हीं और पशु-पक्षियों से कभी इस संबंध में गवाही ली गई? कभी उन्होंने भी कहा कि तुम हमसे श्रेष्ठ हो। कभी उनसे भी यह बात पूछी गई, या आदमियों ने एक तरफा निर्णय कर लिया, खुद ही तय कर लिया कि हम सर्वश्रेष्ठ हैं?

पुरुषों से पूछो कि पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ हैं। सभी पुरुष एकदम राजी हो जाते हैं, स्त्रियों की गवाही लेने की कोई जरूरत नहीं। और किसी भी पुरुष के अहंकार को तृप्ति मिलती है, वह राजी हो जाता है। भारतीयों से पूछो तो वे कहेंगे जमीन पर हमसे ज्यादा श्रेष्ठ, सभ्य और कोई कौम नहीं है। यही पवित्र भूमि है। यहीं भगवान जन्म लेता है। इसके लिए कोई संदेह पैदा नहीं करता। क्योंकि हम सबके अहंकार की इसमें तृप्ति हो जाती है। जर्मनी में पूछो, वहां के लोग भी इसी बात को मानते हैं, और चीन में पूछो, वहां के लोग भी। और अगर कभी ऐसा समय आ सका कि आदमी पशु-पक्षियों से पूछने में समर्थ हो सका तो उसे हैरानी होगी। वे भी यही मानते हैं कि हमसे ज्यादा श्रेष्ठ और कोई भी नहीं।

हम इस तरह के असत्य इसलिए स्वीकार कर लेते हैं कि हमारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। जब पहली दफा डार्विन ने यह कहा कि आदमी भी पशुओं में से एक पशु है तो सारी दुनिया में डार्विन का विरोध हुआ। इसलिए नहीं कि जो उसने कहा था वह असत्य था। बल्कि इसलिए कि उससे हमारे अहंकार को बड़ी चोट पहुंची। हम ईश्वर के पुत्र थे। और उस नासमझ ने कह दिया कि तुम सब पशुओं के ही पुत्र हो। बहुत क्रोध आया, बहुत गुस्सा आया। हजारों साल तक हम मानते थे कि सूरज जमीन का चक्कर लगाता है। फिर एक आदमी हो गया, गैलिलियो--और उसने कहा कि नहीं, जमीन ही सूरज का चक्कर लगाती है। सारी दुनिया में विरोध हुआ। पादरियों ने, चर्च के धर्म पुरोहितों ने कहाः झूठी है यह बात। क्योंकि भगवान ने आदमी को अपनी शक्ल में बनाया। और इस पृथ्वी को उसने दुनिया का केंद्र बनाया और आदमी को यहां पैदा किया। सूरज ही चक्कर लगाता होगा, जमीन कैसे चक्कर लगा सकती है। हम इस जमीन पर रहते हैं।

मनुष्य जिस जमीन पर रहता है वह जमीन सूरज का चक्कर लगाएगी! नहीं सूरज ही चक्कर लगाता होगा। जमीन केंद्र थी दुनिया की। क्योंकि हमारा अहंकार, मनुष्य का अहंकार मानता था कि जमीन केंद्र है, सेंटर है, सारे जगत का। सारे तारे, सूरज सब इसका चक्कर लगाते हैं। और हजारों वर्ष तक इस पर किसी ने शक नहीं किया। क्योंकि इससे हमारे अहंकार को चोट पहुंचती। इससे बहुत बेचैनी होती।

पीछे बर्नार्ड शॉ ने इस सदी में एक दिन यह कह दिया कि गलत था गैलिलियो, और मैं कहता हूं कि सूरज ही जमीन का चक्कर लगाता है। तो किसी ने पूछा यह किस आधार पर कहते हैं, अब आप? अब तो सब तरह से प्रमाणित हो गया है कि जमीन ही चक्कर लगाती है। बर्नार्ड शॉ ने कहाः इसी आधार पर कहता हूं कि मैं बर्नार्ड शॉ इस जमीन पर रहता हूं। जिस जमीन पर मैं रहता हूं, वह किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। मजाक में उसने यह बात कही, सारे आदमी पर यह मजाक हो गई। आदमी इसको मानने को राजी नहीं होता कि मैं किसी का चक्कर लगाता हूं। जमीन कभी चक्कर नहीं लगा सकती। लेकिन धक्के लगे, और आदमी को और नीचे आ जाना पड़ा।

पीछे फ्रायड ने और कुछ बातें कह दीं, जिससे और तिलमिलाहट पैदा हो गई। उसने कह दिया कि आदमी का सारा जीवन सेक्स के केंद्र पर घूमता है। तब तो और घबड़ाहट हुई। तब तो और बेचैनी हुई। तब तो हमें लगा कि हमारा सब कुछ छीन लिया गया। हम मानते थे कि हम परमात्मा के केंद्र पर घूमते हैं, और ये आदमी कहता है फ्रायड, कि सब सेक्स के केंद्र पर घूमते हैं। यह चौबीस घंटे की जिंदगी उसी के चित्त, उसी के आस-पास, इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है। बहुत धक्का लगा। फ्रायड के सारी दुनिया में दुश्मन खड़े हो गए। आदमी मानने को यह राजी न हुआ कि मैं और... मैं जो कि देवताओं से थोड़ा ही नीचे बनाया गया है, मैं और सेक्स के केंद्र पर घूमता हूं! झूठी है यह बात। आत्मा की कोई बात कहता, परमात्मा की कोई बात कहता, प्रेम की, पवित्र प्रेम की कोई बात कहता तो ठीक भी हो सकती थी। काम की और वासना की!

आदमी के अहंकार को चोट लगती है तो वह स्वीकार नहीं करता। वह उन्हीं बातों को स्वीकार करता है जिससे अहंकार को तृप्ति मिलती है। और यह हजारों वर्षों से चला आ रहा है। और इसका परिणाम यह हुआ है कि आदमी ने अपने आस-पास एक मिथ, एक कल्पना का जाल बुन लिया है। और उस जाल में वह विश्वास किए जाता है। और वह जाल इतना झूठा है कि उस जाल में जो गिरा है, वह कभी सत्य की तरफ आंखें भी नहीं उठा सकेगा। खुद ही डरेगा, क्योंकि सत्य की तरफ आंखें उठाना इस जाल का टूटना बन जाएगा।

और जब तक हम मनुष्य के जीवन के तथ्यों को सीधा-सीधा न जान लें, तब तक हम जीवन के सत्य को भी नहीं जान सकते हैं। सत्य को जानने के पहले तथ्यों को जान लेना जरूरी है। जो फैक्ट्स हैं उनको जान लेना जरूरी है। चाहे वे कितने ही कड़वे, कितने ही तीखे, कितने ही जलन पैदा करने वाले क्यों न हों, तथ्यों को जान लेना बहुत जरूरी है। और कल्पनाएं चाहे कितनी ही सुखद और मधुर और प्रीतिकर क्यों न हों, वे कल्पनाएं ही हैं। उन पर चढ़ कर कोई यात्रा नहीं कर सकता।

सपनों की नावों में सागर में तैरा नहीं जा सकता। और शब्दकोश के सागर में, डिक्शनरी में जो समुद्र है उसको पकड़ कर कोई उसमें से बूंद, एक बूंद भी नहीं निकाल सकता। और कल्पना की जो नौकाएं हैं उनको ले जाकर तो सागर में तैरने का कोई सवाल नहीं है।

मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ी जो दुर्घटना घट गई वह यह कि मनुष्य ने अपने आस-पास कल्पनाओं का एक ऐसा जाल बुन लिया है, और उसको तोड़ने में उसे बड़ी झिझक होती है। बड़ी घबड़ाहट होती है। वह उस जाल को बुनता ही चला जाता है। धीरे-धीरे उस जाल में खो जाता है, और पता लगाना भी मुश्किल होता है कि कौन है इसके भीतर?

एक सम्राट के संबंध में मैंने सुना, रोज एक घंटे को वह अपने भवन के एक कमरे में ताला लगा कर भीतर बंद हो जाता था। घर का हर आदमी उत्सुक था उस महल का। रानियां उत्सुक थीं, दरबारी उत्सुक थे, वजीर उत्सुक थे कि वह वहां क्या करता है? वहां क्या करता है इसकी उत्सुकता सभी को थी। लेकिन कभी कोई उस द्वार के भीतर नहीं जा सका था, उसकी चाबी वह अपने पास रखता था। और एक घंटे भर के लिए चाबी खोल कर भीतर हो जाता था, द्वार बंद कर देता था। आखिर उत्सुकता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गई और सारे घर के लोगों ने मिल कर एक षडयंत्र किया कि देखें ये वहां करता क्या है? उससे पूछते थे, वह हंस देता था और कभी कुछ बताता नहीं था। आखिर जब सारे घर के लोग रानियां और वजीर और उसके सारे मित्र और परिजन सहमत हो गए तो उन्होंने उस दीवाल में एक छेद किया रातों-रात, ताकि कल सुबह जब वह जाए तो उसमें से झांक कर देख सकें कि वह वहां करता क्या है?

और जिसने भी झांक कर देखा, वह जल्दी से छेद से अलग हट आया और उसने कहा कि अरे! अजीब बात थी। वहां वह बड़ा अजीब काम करता था। सभी ने झांक कर देखा और जल्दी लोग छेद से अलग हट आए। वहां वह क्या करता था? वहां जाकर वह अपने सारे वस्त्र निकाल कर अलग फेंक देता था और नग्न खड़ा हो जाता था। और परमात्मा से कहता था--यह हूं मैं। वह मैं नहीं था जो अभी कपड़े पहने हुए था। और हाथ जोड़ कर परमात्मा से कहता था कि यह हूं मैं, वह मैं नहीं था जो अभी कपड़े पहने हुए था। वह बिल्कुल झूठा आदमी था, वह मैं नहीं था। तो उन कपड़ों को पहने हुए तेरी प्रार्थना कैसे करूं, जो झूठे थे? उन कपड़ों को पहने हुए तेरे पास कैसे आऊं, जो कि झूठे थे? वे कपड़े मेरे अहंकार की सजावट तो थे, लेकिन मेरी सच्चाई न थे। मैं तो यह हूं: नंगा आदमी, बिल्कुल नग्न। तो मैं नग्न होकर ही तेरे पास आ सकता हूं।

यह राजा बड़ा अदभुत रहा होगा। और हर आदमी को ऐसा ही होना पड़ता है अगर उसे सत्य के निकट जाना हो--नग्न। वस्त्रों को पहन कर कोई भी सत्य के निकट नहीं जा सकता। क्योंकि वस्त्र झूठे हैं। वस्त्र जितने सुंदर हैं, भीतर का आदमी उतना ही कुरूप है। वस्त्र जितने चमकीले हैं, भीतर का आदमी उतना ही फीका है। असल में भीतर के फीकेपन को ही छिपाने को तो हम चमकीले वस्त्रों को खरीद ले आते हैं। असल में भीतर की कुरूपता को ही, ढांकने को ही तो हम बाहर के सौंदर्य को खोज लेते हैं और इकट्ठा कर लेते हैं। बाहर हम जैसे हैं ठीक उससे उलटे हम भीतर हैं।

और वह जो भीतर है वही तथ्य है। वह जो भीतर नग्नता है उसे जानना जरूरी है। क्योंकि उसे हम जानें तो उसके ऊपर उठ सकते हैं। उसे हम जानें तो उसे विदा किया जा सकता है। लेकिन हम उसे जानें ही न, तो उसे विदाई करने का कोई भी कारण नहीं है। जिसे हम जानेंगे नहीं, उसे विदा नहीं किया जा सकता। जिसे हम पहचानेंगे नहीं उसे विदा नहीं किया जा सकता। और हम जो भी उपाय करते रहेंगे, वे उपाय किसी काम के न होंगे। क्योंकि बेसिक कॉ.ज, उनके भीतर का जो बुनियादी आधार है, वह हमारी नजर में नहीं होगा।

एक आदमी बीमार था। बीमारी उसकी बड़ी अजीब थी और कोई चिकित्सक उसकी बीमारी का ठीक-ठीक अर्थ न निकाल पाया। उस आदमी की आंखें बाहर को निकली पड़ती थीं, कान में भन-भन की आवाज होती थी, सिर चक्कर खाता हुआ मालूम पड़ता था। वह बहुत बड़ा धनपति था। उस देश के जो बड़े से बड़े चिकित्सक थे उनके पास गया। किसी ने कहाः तुम्हारी आंखें कमजोर हो गई हैं, चश्मे की जरूरत है। उसने चश्मा लगाना शुरू कर दिया, लेकिन बीमारी जिस जगह थी वहीं रही। उसमें कोई फर्क न पड़ा। दूसरे चिकित्सकों के पास गया, किसी ने कहाः तुम्हारें दांत खराब हो गए हैं, सब निकाल देने पड़ेंगे। उसके सारे दांत निकाल दिए गए, लेकिन बीमारी जहां थी वह वहीं रही। किसी ने कहाः तुम्हारे पेट में खराबी है, और अपेंडिक्स निकाल देनी पड़ेगी। और उसकी अपेंडिक्स का भी ऑपरेशन कर दिया गया, लेकिन बीमारी जहां थी वह वहीं रही। वह परेशान हो गया, लेकिन बीमारी हटती नहीं थी। आखिर वह अंतिम चिकित्सक के पास गया। उस चिकित्सक ने उसकी जांच की और उसने कहाः बीमारी का कोई कारण नहीं मिलता है इसलिए बीमारी ठीक नहीं हो सकेगी। और मैं तुम्हें बताए देता हूं, तुम व्यर्थ परेशान मत हो, तुम छह महीने से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकोगे। मैं तुम्हें सच्ची बात कहे देता हूंः तुम दांत निकलवाओ, आंखें निकलवाओ, तुम्हें जो भी निकलवाना हो निकलवाओ। तुम बीमारी से उठ नहीं सकोगे, छह महीने और।

उस आदमी ने डाक्टर को धन्यवाद दिया और उसने कहा, आपने बड़ी कृपा की। अब अच्छा है, मैं वापस जाता हूं। जब यह तय हो गया है कि छह महीने से ज्यादा नहीं बचना है तो उसने एक बहुत बड़ा भवन खरीदा, बहुत सुंदर गाड़ियां खरीदीं। जो भी उपलब्ध था देश में भोग के लिए वह सब उसने खरीदवा लिया कि छह महीने जिंदा रहना है तो ठीक से भोग कर लूं छह महीने। तो उसने जाकर दो सौ सूट का देश के सबसे बड़े टेलर को आज्ञा दी। क्योंकि अब मैं रोज नये कपड़े ही पहनूंगा। अब क्या मतलब है कि रोज पुराने कपड़े दोहराऊं? उस टेलर ने उसका नाप लिया, सारा नाप अपने सहयोगी को लिखवाया, गले का नाप लिया और उस टेलर ने कहाः लिखो सोलह। उस आदमी ने कहा कि नहीं, मैं हमेशा पंद्रह का ही कॉलर पहनता हूं। उस टेलर ने कहाः पंद्रह का नहीं, आप जितना चाहें उतने का पहनें। लेकिन अगर पंद्रह का कॉलर पहनेंगे तो आंखें बाहर को निकली मालूम पड़ेंगी, सिर घूमता मालूम पड़ेगा, चक्कर आते मालूम पड़ेंगे। पंद्रह का नहीं चौदह का पहनें, जितना आपकी मर्जी हो! उसने कहा क्या कहते हो? मैं हमेशा से पंद्रह ही का पहनता हूं। और मेरी आंखें भी बाहर को निकली मालूम पड़ती हैं, और मेरे कान भी भनभनाते हैं, और मुझे चक्कर भी आते हैं। उसने कहाः वे

आएंगे ही, कॉलर जब बहुत कसा हुआ होगा तो यह होने वाला है। उसने सोलह का कॉलर पहना वह आदमी अभी जिंदा है। यह बात हुए तीस साल हो गए। और उस आदमी ने ही मुझसे यह कहा है कि सोलह के कॉलर से सब कुछ ठीक हो गया।

कोई चिकित्सक उसे ठीक नहीं कर सका था। बीमारी उसकी वहां नहीं थी जहां चिकित्सक खोजते हैं। आदमी की बीमारी वहां नहीं है जहां पुरोहित उसे बताते हैं, जहां चिकित्सक उसे समझाते हैं। बल्कि उनकी चिकित्सा उस आदमी को और बीमार बनाती गई, उसके दांत निकल गए, उसकी आंखों की परेशानी हो गई, उसकी अपेंडिक्स निकाल दी। और अगर वहां डाक्टरों के हाथ में पड़ा रहता तो धीरे-धीरे उसकी सब हड्डियां बाहर निकाल देते। लेकिन उसकी वह बीमारी न थी। बीमारी बहुत सरल थी और सीधी थी। लेकिन चिकित्सक की दृष्टि में वह आ नहीं सकती थी।

मनुष्य की बीमारी भी बहुत सीधी और सरल है। लेकिन जो लोग शास्त्रों की जटिलता में खो गए हैं, उन्हें वह बीमारी दिखाई नहीं पड़ सकती। न दिखाई पड़ने का कारण है कि वे इतने जटिल हैं, इतने शास्त्रों में खो गए हैं कि तथ्यों को देखने की सामर्थ्य उनकी नहीं रह गई। और फिर वे जो उपचार करते हैं और निदान करते हैं, वह निदान और उपचार और नई बीमारियां ले आता है। उनका उपचार और निदान बीमारी को बढ़ाता चला गया है। कौन सी बीमारी को?

मनुष्य के तथ्यों को न जानने की बीमारी। और जिनके पास हम जाते हैं इस इलाज के लिए, वह हमारे तथ्यों को और छिपा देते हैं। और वे जो बातें हमसे कहते हैं, वह और नई मिथ खड़ी करती हैं, नई कल्पनाएं खड़ी करती हैं। वे आपसे कहेंगेः आपके भीतर तो आत्मा है। आत्मा तो परम पवित्र और शुद्ध है। परम शांत है, शुद्ध बुद्ध है। और मोक्ष और परमात्मा और न मालूम क्या-क्या बातें आपसे कहेंगे? जिनसे आपकी बीमारी का कोई संबंध नहीं, और इन सारी बातों में आप और खो जाएंगे और अपने तथ्यों को छिपा लेंगे।

तथ्य बहुत दूसरे हैं। आदमी की नग्नता बहुत दूसरी है। वस्त्रों में छिपाने से उसका हल नहीं है। उसे उघाड़ना, देखना और परिचित होना जरूरी है। जीवन जैसा है उसे वैसा ही देखना जरूरी है। किन्हीं सिद्धांतों के धुंए के द्वारा नहीं--सीधा, डायरेक्ट, खुली आंखों से।

और जब कोई आदमी इस बात के लिए राजी हो जाता है कि मैं अपने जीवन के तथ्यों को देखूं, तो उसके जीवन में एक क्रांति की शुरुआत हो जाती है। क्योंकि जो तथ्य कुरूप है और दुखद है, उसे देखते से ही उसे बदलने की आकांक्षा का जन्म होता है। हम उसे देखते ही नहीं तो उसके बदलने का सवाल ही नहीं उठता है। और अगर हम उसे अच्छे शब्दों में छिपा लेते हैं, तब तो और भी सवाल नहीं उठता है। और अगर हम उसे बहुत-बहुत सिद्धांतों का जामा पहना देते हैं, तब तो वह दिखाई ही नहीं पड़ता है।

आदमी ने ऊपर ही वस्त्र नहीं पहन लिए हैं शरीर के, उसने अपने चित्त पर भी बहुत वस्त्र पहन लिए हैं। और दिन में उसे इतने वस्त्र पहनने पड़ते हैं, और इतनी बार वस्त्र बदलने पड़ते हैं। बाहर के कपड़े तो वह एक दफा पहन लेता है और चल जाता है। लेकिन भीतर उसे हर घड़ी वस्त्र बदलने पड़ते हैं। क्योंकि हर नये आदमी के साथ उसे दूसरे वस्त्र पहनकर मिलना पड़ता है। अपने नौकर से वह दूसरे वस्त्रों में मिलता है, अपने मालिक से दूसरे वस्त्रों में, अपनी पत्नी से दूसरे वस्त्रों में मिलता है, अपनी प्रेयसी से दूसरे वस्त्रों में। चौबीस घंटे उसे वस्त्र बदलने पड़ते हैं, चेहरे बदलने पड़ते हैं।

और तब इस बदलाहट की जिंदगी में जिंदगी बदलते-बदलते वह यह भूल ही जाता है कि मेरा ओरिजिनल फेस, मेरा असली चेहरा क्या है? दूसरों को दिखाने में वह बहुत से चेहरे बना लेता है। हम सब

जानते हैं, हम दिन भर चेहरे बनाते हैं। हम सब बहुत कुशल अभिनेता हैं। हमारी पूरी दुनिया एक बहुत अदभुत रंगमंच है। फिल्म में और नाटक में जो अभिनय कर रहे हैं, वे हमसे ज्यादा कुशल नहीं हैं। फिल्म में नाटक करना बहुत आसान है, जिंदगी के पर्दे पर बड़ा कठिन है। लेकिन हम सब जिंदगी के पर्दे पर बहुत नाटक करते हैं।

बर्ट्रेंड रसल एक दिन सुबह-सुबह अपने घर के द्वार पर बैठा हुआ था। एक आदमी आया और उसने आकर बर्ट्रेंड रसल की गर्दन पकड़ ली, और उससे कहाः महानुभाव! आप ऐसी-ऐसी किताबें लिखते हैं जिनसे मैं बहुत परेशान हूं। पहली तो बात आपकी किताबों में मेरी समझ में ही नहीं आता कि आप क्या लिखते हैं? आज तक मैं एक भी वाक्य नहीं समझ सका। सिर्फ एक वाक्य मेरी समझ में आया, सो वह गलत है। कौन सा वाक्य? बर्ट्रेंड रसल ने घबड़ा कर पूछाः कौन सा वाक्य? तो उसने कहाः आपने लिखा है--सीजर इ.ज डेड, सीजर मर चुका। यह बिल्कुल गलत बात है। यही मेरी समझ में आया आपकी कुल किताब में, और ये बिल्कुल गलत बात है। सीजर को मरे दो हजार साल हो गए।

रसल भी घबड़ा गया कि ये आदमी क्या कहता है कि यह बात गलत है। उसने कहाः तुम्हारे पास कोई प्रमाण है? उसने कहाः है, मैं खुद ही सीजर हूं। रसल ने कहाः तब फिर बातचीत करनी गलत है। मैं हाथ जोड़ता हूं, मुझसे गलती हो गई। अगले संस्करण में मैं सुधार कर लूंगा। वह आदमी खुश होकर चला गया। पीछे पता चला, वह एक फिल्म में सीजर का काम करता था। उसका दिमाग खराब हो गया, तब से वह अपने को सीजर ही समझने लगा था। और उसने किताब में पढ़ा कि सीजर मर गया तो उसे बहुत गुस्सा आया कि आदमी कैसा है? मैं अभी जिंदा हूं। हम फिर धीरे-धीरे जिन चेहरों का अभिनय करते हैं, धीरे-धीरे भूल जाते हैं कि वे अभिनय थे। और ऐसा मालूम होने लगता है वे हमारे ही चेहरे हैं, मैं सीजर हूं। हम सबके साथ ही यह बात है। हम सबने बहुत चेहरों का अभिनय किया है।

और फिर हम आत्मज्ञान की खोज में निकल पड़ते हैं। और ये भूल ही जाते हैं जिसको अपने चेहरे का भी पता नहीं, उसे आत्मज्ञान कैसे हो सकेगा? जिसे यह भी पता नहीं है, मैं कौन हूं? है तो, उसने हर तरह से दिखाने की कोशिश की है--मैं यह हूं, मैं वह हूं, चौबीस घंटे पूरी जिंदगी। और वह सफल भी हो गया होगा। क्योंकि जहां हम बाकी लोग भी अभिनेता हों, वहां अभिनय सफल हो जाए इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यहां तो अगर कोई आदमी पूरी सच्चाइयां खोल दे जिंदगी की तो उसको हम गोली मार देंगे। उसको हम सूली पर लटका देंगे कि यह आदमी गड़बड़ है।

हम सब इतने झूठ में जीते हैं कि अगर कोई सच्चा आदमी एकदम से खड़ा हो जाता है तो वह सच्चा आदमी हमें इतना, इतना अजीब मालूम पड़ता है कि एक ही व्यवहार हम उसके साथ कर सकते हैं। जब तक वह जिंदा है--कि उसको मार डालें, और जब मर जाए तो दूसरा व्यवहार--कि हम उसकी पूजा करें। दो व्यवहार हम उस आदमी के साथ कर सकते हैं। जिंदा हम उसे मार डालें, और जब मर जाए तो उसकी हम पूजा करें।

जिंदा हमें इसलिए मार डालना जरूरी हो जाता है कि वह हमारे साथ... हम सबका कंडेम्नेशन बन जाता है, वह हम सबकी आलोचना बन जाता है। हम सबकी निंदा बन जाता है। अगर वह आदमी सच्चा है तो हम बिल्कुल झूठे हैं। और यह बात दिखाई पड़नी कि मैं झूठा हूं, बड़ी घबड़ाने वाली बात है। उस आदमी को मिटा देना जरूरी है। इसलिए हम क्राइस्ट को सूली पर लटका देते हैं, या गांधी को गोली मार देते हैं।

मैं अभी एक गांव में था। और सुबह जब वहां प्रश्न पूछने के लिए लोगों ने चिट्ठियां भेजी तो उसमें एक बहुत बढ़िया चिट्ठी आई। उस चिट्ठी में लिखा था कि कृपा करके यह बताएं कि आपको गोली क्यों न मार दी जाए? मैंने उनसे कहाः ऐसी भूल मत करना। ऐसी भूल पहले भी कुछ लोग कर चुके हैं। जिसको भी तुम गोली

मार देते हो, उसका मरना फिर बहुत मुश्किल हो जाता है। फिर वह मरता ही नहीं। फिर वह जिंदा ही बना रह जाता है। और ऐसी भूल कभी मत करना। क्योंकि जिसको तुम गोली मारोगे, उसकी ही कल तुम पूजा करोगे। तो मैंने कहा कि मेरे तो हित में होगा कि तुम गोली मार दो, तुम्हारे बहुत अहित में पड़ जाएगा। गोली मत मारना।

लेकिन हमारा मन होता है, उस आदमी को गोली मार देने का जो हमारे कपड़े छीनने लगे और हमको नग्न करने की कोशिश करे। लेकिन मजबूरी है जो लोग भी सत्य की तरफ जाना चाहते हैं उनके कपड़े, उनको कपड़े छोड़ ही देने पड़ेंगे।

तो पहले दिन आज की इस चर्चा में मैं आपसे यह कहना चाहता हूंः आत्मा को पाने की उत्सुकता है--वह तो ठीक, लेकिन कपड़े छोड़ने की तैयारी है या नहीं? सत्य को पाने की प्यास है--वह तो ठीक, लेकिन असत्य को छोड़ने की हिम्मत भी है या नहीं? परमात्मा की तरफ उठने का खयाल पैदा हुआ है--वह तो ठीक, लेकिन जिस झूठे परमात्मा को हमने गढ़ रखा है उससे हटने की भी इच्छा का जन्म हुआ है या नहीं?

सत्य तक जाना असत्य को छोड़ने के बिना नहीं होता है। और असत्य क्या है? सबसे बड़ा असत्य यह है कि हम जो नहीं हैं, चौबीस घंटे हम उसका प्रदर्शन कर रहे हैं कि हम वह हैं। गांधी के पास एक संन्यासी आया। और उस संन्यासी ने कहा मैं सेवा करना चाहता हूं, और मुझे आपका संदेश प्रीतिकर लगा। तो मैं सेवा करने को आ गया हूं। गांधी ने कहा कि पहली सेवा यह करो, कि ये जो गैरिक वस्त्र पहने हुए हैं, ये छोड़ दो। ये गेरुएं वस्त्र छोड़ दो।

उस संन्यासी ने कहाः इनको छोड़ दूं! मैं संन्यासी हूं। गांधी ने कहाः वस्त्रों से संन्यास का क्या संबंध है? और अगर तुम इन वस्त्रों को पहन कर गांव में जाओगे तो लोग तुम्हारी सेवा करेंगे, तुम उनकी सेवा नहीं कर पाओगे। तो अगर उनकी सेवा करनी है तो इन वस्त्रों में मत जाओ, ये स्वामियों के वस्त्र हैं। स्वामी सेवक नहीं हो सकता। संन्यासी को तो हम स्वामी कहते हैं, वह कैसे सेवक हो सकता है? वह मालिक है, इनको छोड़ दो।

लेकिन वह संन्यासी जो कि घर-द्वार और पत्नी छोड़ने की हिम्मत कर सका था, वह संन्यासी जो कि अपना धन-दौलत मकान छोड़ने की हिम्मत कर सका था, दो पैसे की गेरू में रंगे गए कपड़े को छोड़ने को राजी नहीं हो सका। वह वापस लौट गया। दो पैसे के वस्त्र इतने बहुमूल्य हैं क्या?

असल में वस्त्रों का मूल्य यह है कि वस्त्रों को छोड़ते ही हम कुछ भी नहीं हैं। उनकी वजह से हम कुछ हैं। मैं कुछ हूं, आप कुछ हैं। कोई संन्यासी है, कोई राजा है, कोई पद पर है, कोई कुछ है, कोई कुछ है--वस्त्रों की वजह से। नग्न हम हो जाएं तो हम कोई भी कुछ न रह जाएंगे। सब नोबडी हो जाएंगे। समबडी कोई भी नहीं रहेगा।

वस्त्र छोड़ने में डर है। मन के वस्त्र बहुत गहरे में हमारे जीवन को पकड़े हुए हैं। उन्हीं को हमने जाना है, अपना होना। वे ही हमारे बीइंग बन गए हैं, हमारी आत्मा बन गए हैं। और अगर वे झूठे हैं तो सच्ची आत्मा कैसे पाई जा सकेगी?

इसलिए पहली जरूरत है कि अपने भीतर हर मनुष्य खोजे कि मैंने असत्य को प्रश्रय तो नहीं दिया? अपने व्यक्तित्व को मैंने असत्य की ही पर्तों से तो नहीं ढाला? कहीं असत्य की ही फौलाद तो मेरे जीवन को नहीं बनाए हुए है--इसे देखना। इसे बहुत खुली आंखों से जानना जरूरी है। बड़ी अदभुत बात है। बड़ी पीड़ा होगी इस बात को जानने में कि मैं क्या हूं? क्या हूं मैं, कैसा पशु हूं? कैसा नग्न हूं? कैसे क्रोध से भरा हूं? कैसी घृणा से, कैसी हिंसा से? लेकिन हमने तो वस्त्र पहन रखे हैं।

एक आदमी भीतर गहरी हिंसा से भरा होता है, और पानी छान कर पी लेता है, और अहिंसक हो जाता है। और भूल जाता है कि मेरे भीतर की हिंसा पानी छान कर पी लेने से समाप्त होने वाली बात होती तो बड़ी आसान बात थी। तो सारी जमीन पर सारा पानी छनवाया जा सकता है। हर नल में फिल्टर लगाया जा सकता है। और हर आदमी छना पानी पी ले और अहिंसा आ जाए तो दुनिया में, तो कितना आसान था यह नुस्खा। दुनिया में युद्ध कभी के बंद हो गए होते।

एक आदमी रात को खाना छोड़ देता है, और अहिंसक हो जाता है। इतनी सस्ती बात! रात का खाना छोड़ देना और अहिंसा जैसी क्रांति इतने सस्ते में खरीद लेता है। भीतर हिंसा रही जाती है, ऊपर से वह अहिंसक हो जाता है। और फिर अहिंसक अपने को मानने लगता है। स्वीकार कर लेता है कि मैं अहिंसक हो गया। हमारा पूरा मुल्क ऐसे ही अहिंसकों से भरा हुआ है। इसलिए अहिंसक भी हम बने रहे, और हिंसा भी बरकरार रही अपनी जगह। उसमें कोई फर्क नहीं आया।

ऐसे ही हमारे बाकी भी सारे खयाल हैं। ऐसे ही हम सब दिखाते पड़ते मालूम होते हैं कि हम सब प्रेम करते हैं एक-दूसरे को और प्रेम का हमें पता भी नहीं है। हम प्रेम की बातें करते हैं, हाथ फैलाते हैं और एक दूसरे का आलिंगन भी करते हैं। लेकिन हमारे हृदय में कहीं कोई प्रेम नहीं है। पिता दिखलाता है अपने बेटे को कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। बेटा दिखलाता है अपने बाप को कि मैं भी आपको श्रद्धा और आदर करता हूं। मां अपनी बेटी से कहती है--मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। पति अपनी पत्नी से कहता है--मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।

और कोई किसी की पत्नी है, कोई किसी का पति है, बेटा है, बाप है। तो अगर सारी जमीन पर ये सारे लोग प्रेम करते हैं तो घृणा कहां से आती है फिर? ये सारे लोग दावा करते हैं कि हम प्रेम करते हैं तो फिर दुनिया में अप्रेम कहां से आता है? फिर तो अप्रेम को आने की कोई जगह न रही। अगर बाप प्रेम करता है, मां प्रेम करती है, बेटा प्रेम करता है, पत्नी प्रेम करती है, पति प्रेम करता है तो फिर आदमी बचते ही नहीं दुनिया में जो इनके बाहर हों। फिर अप्रेम कौन करता है, फिर घृणा कौन लाता है? फिर हिंसा कौन लाता है, फिर युद्ध कौन जन्माता है? बड़ी हैरानी की बात है!

अगर ये प्रेम सच्चा है तो ये युद्ध झूठे होने चाहिए। लेकिन युद्ध इतनी बड़ी सच्चाई है कि उसे तो झूठ कहा नहीं जा सकता है। फिर अब एक ही रास्ता बचता है कि ये प्रेम झूठा होगा। अगर मां ने अपने बच्चों को प्रेम किया था तो युद्ध के मैदान पर कौन लोग कटे? किन मां ने उनको भेजा वहां, अगर बाप ने अपने बेटों को प्रेम किया था तो किन बापों ने अपने बच्चों को भेजा युद्ध पर? कौन भेजता है? कौन बहन अपने भाई को भेजती है? कौन पत्नी अपने पति को भेजती है किसी की हत्या करने?

नहीं, लेकिन हम प्रेम नहीं करते। प्रेम हमारे झूठे हैं, नाम मात्र को हैं। प्रेम की पताका है, पीछे घृणा का मंदिर है। प्रेम की बातचीत है और नारा है, पीछे घृणा से भरा हुआ हृदय है। और तब हम बातें प्रेम की किए चले जाते हैं, और काम हिंसा के किए चले जाते हैं।

यह जानना होगाः जिस आदमी को सच्चाई की तरफ जाना है उसे अपने प्रेम को उघाड़ कर जानना होगा कि वह प्रेम है, या कि एक झूठी नकाब है? और अगर वह झूठी नकाब है, यह दिखाई पड़ जाए तो इस जमीन पर कोई भी आदमी फिर बिना प्रेम के एक क्षण जीवित नहीं रह सकता है। उसके प्राणों में ऐसा-ऐसा आंदोलन, ऐसी पीड़ा और ऐसी आकांक्षा उठेगी कि मेरे जीवन में प्रेम नहीं है? इतनी प्यास उठेगी कि वह खोज लेगा प्रेम। जहां भी हो, वहां से; जगा लेगा वहां से।

लेकिन जब तक हम प्रेम को छिपाए रहते हैं, झूठे प्रेम को उघाड़े रहते हैं, तब तक हमें यह भ्रम बना रहता है कि मैं प्रेम से भरा हूं। इसलिए प्रेम की खोज नहीं हो पाती, इसलिए प्रेम का जन्म नहीं हो पाता। असत्य-प्रेम की धारणा, फिर सत्य-प्रेम को पैदा नहीं होने देती। मैं आपसे कहता हूंः यह परिवार हमारा झूठा है। यह परिवार की संस्था एकदम झूठी है, इसमें कहीं कोई प्रेम नहीं है। लेकिन हम झूठी बातों को ऐसा, ऐसा रूप दिए बैठे हैं, ऐसा आकार दिए बैठे हैं कि ऐसा मालूम होता है हमको--हमारे परिवार, हमारे दांपत्य, हमारे मां-बाप, हमारे बच्चे--इनके किसी के भीतर कोई प्रेम नहीं है। लेकिन जब तक हम यह खयाल लिए बैठे रहेंगे कि यह प्रेम है तब तक फिर, तब तक फिर कोई फर्क कैसे हो? जब तक हम हिंसा को अहिंसा में छिपाए रखेंगे तो फिर फर्क कैसे हो? फिर क्रांति कैसे हो? जीवन कैसे बदले?

जीवन के तथ्य देखना जरूरी है। उघाड़ना जरूरी है आदमी को, प्रत्येक व्यक्ति को, स्वयं को, अपने आप को पूरी नग्नता में देखना जरूरी है। तभी, तभी धर्म की तरफ यात्रा हो सकती है। तभी परमात्मा की तरफ कदम उठाए जा सकते हैं। तभी सत्य की तरफ आंखें खुल सकती हैं।

इस पहली चर्चा में मैं यही निवेदन करता हूंः जीवन के तथ्यों को जानना चाहिए, शास्त्रों की कथाओं को नहीं। जीवन के तथ्यों को, शास्त्रों के शब्दों को नहीं; जीवन के ज्वलंत तथ्यों को। सिद्धांत, थ्योरी.ज नहीं ले जातीं किसी को कहीं, लेकिन तथ्यों का उदघाटन, अनावरण जरूर बदल देता है सारे जीवन को। यह पहला निवेदन मेरा, आने वाली चर्चाओं में दूसरे निवेदन आपसे करने हैं।

एक छोटी सी कहानी और इस चर्चा को मैं पूरा करूंगा।

एक रात एक बड़ी घनी अंधेरी रात में एक काफिला एक रेगिस्तानी सराय में जाकर ठहरा। उस काफिले के पास सौ ऊंट थे। उन्होंने ऊंट बांधे, खूंटियां गड़ाईं, लेकिन आखिर में पाया कि एक ऊंट अनबंधा रह गया है। उनकी एक खूंटी और एक रस्सी कहीं खो गई थी। आधी रात, बाजार बंद हो गए थे। अब वे कहां खूंटी लेने जाएं, कहां रस्सी! तो उन्होंने सराय के मालिक को उठाया और उससे कहा कि बड़ी कृपा होगी, एक खूंटी और एक रस्सी हमें चाहिए, हमारी खो गई है। निन्यानबे ऊंट बंध गए, सौवां अनबंधा है--अंधेरी रात है, वह कहीं भटक सकता है। उस बूढ़े आदमी ने कहाः घबड़ाओ मत। मेरे पास न तो रस्सी है, और न खूंटी। लेकिन बड़े पागल आदमी हो। इतने दिन ऊंटों के साथ रहते हो गए, तुम्हें कुछ भी समझ न आई। जाओ और खूंटी गाड़ दो और रस्सी बांध दो और ऊंट को कह दो--सो जाए। उन्होंने कहाः पागल हम हैं कि तुम? अगर खूंटी हमारे पास होती तो हम तुम्हारे पास आते क्यों? कौन सी खूंटी गाड़ दें?

उस बूढ़े आदमी ने कहाः बड़े नासमझ हो, ऐसी खूंटियां भी गाड़ी जा सकती हैं जो न हों, और ऐसी रस्सियां भी बांधी जा सकती हैं जिनका कोई अस्तित्व न हो। तुम जाओ, सिर्फ खूंटी ठोकने का उपक्रम करो। अंधेरी रात है, आदमी धोखा खा जाता है, ऊंट का क्या विश्वास? ऊंट का क्या हिसाब? जाओ ऐसा ठोको, जैसे खूंटी ठोकी जा रही है। गले पर रस्सी बांधों, जैसे कि रस्सी बांधी जाती है। और ऊंट से कहो कि सो जाओ। ऊंट सो जाएगा। अक्सर यहां मेहमान उतरते हैं, उनकी रस्सियां खो जाती हैं। और मैं इसलिए तो रस्सियां-खूंटियां रखता नहीं, उनके बिना ही काम चल जाता है।

मजबूरी थी, उसकी बात पर विश्वास तो नहीं पड़ता था। लेकिन वे गए, उन्होंने गड्ढा खोदा, खूंटी ठोकी--जो नहीं थी। सिर्फ आवाज हुई ठोकने की, ऊंट बैठ गया। खूंटी ठोकी जा रही थी। रोज-रोज रात उसकी खूंटी ठुकती थी, वह बैठ गया। उसके गले में उन्होंने हाथ डाला, रस्सी बांधी। रस्सी खूंटी से बांध दी गई--रस्सी, जो नहीं थी। ऊंट सो गया। वे बड़े हैरान हुए! एक बड़ी अदभुत बात उनके हाथ लग गई। सो गए।

सुबह उठे, सुबह जल्दी ही काफिला आगे बढ़ना था। उन्होंने निन्यानबें ऊंटों की रस्सियां निकालीं, खूंटियां निकालीं--वे ऊंट खड़े हो गए। और सौवें की तो कोई खूंटी थी नहीं जिसे निकालते। उन्होंने उसकी खूंटी न निकाली। उसको धक्के दिए। वह उठता न था, वह नहीं उठा। उन्होंने कहाः हद हो गई, रात धोखा खाता था सो भी ठीक था, अब दिन के उजाले में भी! इस मूढ़ को खूंटी नहीं दिखाई पड़ती कि नहीं है? वे उसे धक्के दिए चले गए, लेकिन ऊंट ने उठने से इनकार कर दिया। ऊंट बड़ा धार्मिक रहा होगा।

वे अंदर गए, उन्होंने उस बूढ़े आदमी को कहा कि कोई जादू कर दिया क्या? क्या कर दिया तुमने, ऊंट उठता नहीं। उसने कहाः बड़े पागल हो तुम, जाओ पहले खूंटी निकालो। पहले रस्सी खोलो। उन्होंने कहाः लेकिन रस्सी हो तब... । उन्होंने कहाः रात कैसे बांधी थी? वैसे ही खोलो। गए मजबूरी थी। जाकर उन्होंने खूंटी उखाड़ी, आवाज की, खूंटी निकली, ऊंट उठ कर खड़ा हो गया। रस्सी खोली, ऊंट चलने के लिए तत्पर हो गया। उन्होंने उस बूढ़े आदमी को धन्यवाद दिया और कहाः बड़े अदभुत हैं आप, ऊंटों के बाबत आपकी जानकारी बहुत है। उन्होंने कहा कि नहीं, यह ऊंटों की जानकारी से सूत्र नहीं निकला, यह सूत्र आदमियों की जानकारी से निकला है।

आदमी ऐसी खूटियों में बंधा होता है जो कहीं भी नहीं हैं। और ऐसी रस्सियों में जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। और जीवन भर बंधा रहता है। और चिल्लाता हैः मैं कैसे मुक्त हो जाऊं? कैसे परमात्मा को पा लूं, कैसे आत्मा को पा लूं? मुझे मुक्ति चाहिए, मोक्ष चाहिए--चिल्लाता है। और हिलता नहीं अपनी जगह से, क्योंकि खूंटियां उसे बांधे हैं। वह कहता हैः कैसे खोलूं इन खूटियों को?

पहला सूत्र हैः उन खूटियों को ठीक को देख लेने का, वे हैं भी या नहीं?

तथ्य दिखाई पड़ जाएं तो फिर, तो फिर कोई खोलने और उठने का सवाल नहीं है। आने वाली चर्चाओं में उन्हीं खूटियों के संबंध में कुछ और बात करूंगा जिनमें आदमी बंधें हैं। वे कैसे खुल सकती हैं उनकी? लेकिन पहला सूत्र जानना जरूरी था। जीवन के तथ्य जानने जरूरी हैं, आंख खोल कर। और अंधेरे में कोई धोखे में हों तो भी ठीक, हम दिन के उजाले में भी धोखे में हैं। पीछी पीढ़ियों को छोड़ दें, पीछी पीढ़ियां बहुत अंधेरी रातों में जीईं। लेकिन आज जमीन पर बहुत उजाला है, जितना कभी भी न था। और अब भी अगर कोई ऊंट उनसे बंधा हुआ है तो अगर हैरानी हो तो आश्चर्य क्या है?

तो मैं निवेदन करता हूं कि जरा आंख खोल कर उजाले में अपने आस-पास देखना कि कौन सी खूंटियां मुझे बांधे हुए हैं? मिथ मिलेगी, खूंटी नहीं मिलेगी। कल्पना मिलेगी, कहानी मिलेगी, और बहुत ओल्ड स्टोरी है यह, बहुत पुरानी कहानी। हमेशा से आदमी उसमें चलता रहा है। कुछ थोड़े से लोग तोड़ने में समर्थ हुए हैं। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति समर्थ हो सकता है, यही मुझे आपसे कहना है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

बीज में वृक्ष का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से प्रश्न कल की चर्चा के संबंध में इधर मेरे पास आए हैं। सबसे पहले एक मित्र ने पूछा हैः जीवन में सत्य को पाने की क्या जरूरत है? जीवन इतना छोटा है कि उसमें सत्य को पाने का श्रम क्यों उठाया जाए? बस पिक्चर देख कर और संगीत सुन कर जब बहुत ही आनंद उपलब्ध होता है, तो ऐसे ही जीवन को बिता देने में क्या भूल है?

महत्वपूर्ण प्रश्न है। अनेक लोगों के मन में यह विचार उठता है कि सत्य को पाने की जरूरत क्या है? और यह प्रश्न इसीलिए उठता है कि उन्हें इस बात का पता नहीं है कि सत्य और आनंद दो बातें नहीं हैं। सत्य उपलब्ध हो तो ही जीवन में आनंद उपलब्ध होता है। परमात्मा उपलब्ध हो तो ही जीवन में आनंद उपलब्ध होता है। आनंद, परमात्मा या सत्य एक ही बात को कहने के अलग-अलग तरीके हैं। तो इसको इस भांति न सोचें कि सत्य की क्या जरूरत है? इस भांति सोचें कि आनंद की क्या जरूरत है?

लेकिन आनंद की जरूरत तो पूछने वाले मित्र को भी मालूम पड़ती है। संगीत में और सिनेमा में उन्हें आनंद दिखाई पड़ता है। लेकिन यहां एक और दूसरी बात समझ लेनी जरूरी हैः दुख को भूल जाना आनंद नहीं है। संगीत और सिनेमा या उस तरह की और सारी व्यवस्थाएं केवल दुख को भुलाती हैं, आनंद को देती नहीं। शराब भी दुख को भुला देती है, संगीत भी, सिनेमा भी, सेक्स भी।

दुख को भूल जाना एक बात है, और आनंद को उपलब्ध कर लेना बिल्कुल दूसरी बात। एक आदमी दरिद्र है और अपनी दरिद्रता को भूल जाए, यह एक बात है; और वह समृद्ध हो जाए, यह बिल्कुल दूसरी। दुख को भूलने से सुख का भान पैदा होता है। सुख और आनंद इसीलिए अलग-अलग बातें हैं। सुख केवल दुख का विस्मरण है, फॉरगेटफुलनेस है। आनंद, आनंद किसी चीज की उपलब्धि है, किसी चीज का स्मरण है। आनंद पाजिटिव है, सुख निगेटिव है।

एक आदमी दुखी है। तो इस दुख से हटने के दो उपाय हैं। एक तो उपाय यह है कि वह किसी चीज में इस भांति भूल जाए कि इस दुख की उसे याद न रहे। वह जाए और संगीत सुने। संगीत में इतना तन्मय हो जाए कि उसका चित्त दुख की तरफ न जाए, तो उतनी देर को दुख उसे भूला रहेगा। लेकिन इससे दुख मिटता नहीं है। संगीत से जैसे ही चित्त वापस लौटेगा, दुख अपनी पूरी ताकत से पुनः खड़ा हो जाएगा।

जितनी देर वह संगीत में अपने को भूले था, उतनी देर भी भीतर दुख बढ़ता जा रहा था। भीतर सरक रहा था, दुख और बड़ा हो रहा था। जैसे ही संगीत से मन हटेगा, दुख और भी दुगने वेग से सामने खड़ा हो जाएगा। फिर उसे भूलने की जरूरत पड़ेगी। तो शराब है, और दूसरे रास्ते हैं जिनसे हम अपने चित्त को बेहोश कर लें। ये बेहोशी आनंद नहीं है।

सच्चाई तो यह है जो आदमी जितना ज्यादा दुखी होता है, उतना ही स्वयं को भूलने के रास्ते खोजता है। दुख से ही यह एस्केप और पलायन निकालता है। दुख से ही भागने का और कहीं डूब जाने का, मूर्च्छित हो जाने की आकांक्षा पैदा होती है। आपको पता है, सुख से कभी कोई भागता है?

दुख से लोग भागते हैं। अगर आप यह कहते हैं कि जब मैं सिनेमा में बैठ जाता हूं तो बहुत सुख मिलता है, तो जब आप सिनेमा में नहीं होते होंगे तब क्या मिलता होगा? तब निश्चित ही दुख मिलता होगा। और सिनेमा में बैठ कर दुख मिट कैसे जाएगा? दुख की धारा तो भीतर सरकती रहेगी। जितने ज्यादा दुखी होंगे, उतना ही ज्यादा सिनेमा में ज्यादा सुख मिलेगा। जो सच में आनंदित है उसे तो शायद कोई सुख नहीं मिलेगा।

यह जो हमारी दृष्टि है कि इसी तरह हम अपना पूरा जीवन क्यों न बिता दें मूर्च्छित होकर, भूल कर! तब तो उचित हैः सिनेमा की भी क्या जरूरत है, एक आदमी सोया रहे जीवन भर। जीवन भर सोना कठिन है तो जीने की जरूरत ही क्या है? एक आदमी मर जाए और कब्र में सो जाए तो सारे दुख भूल जाएंगे। इसी प्रवृत्ति से सुसाइड की भावना पैदा होती है। इसी प्रवृत्ति से यह सिनेमा देखने वाला, और शराब पीने वाला, और संगीत में डूबने वाला यही आदमी अगर अपने तर्क की अंतिम सीमा तक पहुचं जाए तो वह कहेगाः जीने की जरूरत क्या है? जीने में दुख है तो मैं मरे जाता हूं। मैं मर जाता हूं। तो फिर उस मृत्यु से वापस लौटने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। यह सब सुसाइडल वृत्तियां हैं। जब भी हम जीवन को भूलना चाहते हैं, तब हम आत्मघाती हो जाते हैं।

जीवन का आनंद उसे भूलने में नहीं, उसे उसकी परिपूर्णता में जान लेने में हैं।

एक संगीतज्ञ हुआ बहुत बड़ा। उसकी अनूठी शर्तें हुआ करती थीं। वह एक राजमहल में अपने संगीत सुनाने को गया। और उसने कहा कि मैं एक ही शर्त पर अपनी वीणा बजाऊंगा कि जब मैं वीणा बजाऊं, तो सुनने वालों में से किसी का सिर न हिले। अगर कोई सिर हिला तो मैं वीणा बजाना बंद कर दूंगा। यह मेरी शर्त है। राजा भी अपनी ही तरह का था। उसने कहाः वीणा रोकने की कोई जरूरत नहीं, हम सिर को ही अलग करवा देंगे जो सिर हिलेगा। तुम वीणा मत रोकना, हमारे आदमी तैनात रहेंगे, जो सिर हिलेगा उस सिर को ही अलग कर देंगे।

संध्या सारे नगर में यह सूचना करवा दी गई कि जो लोग सुनने आएं, थोड़ समझ कर आएं; अगर संगीत सुनते वक्त कोई सिर हिला, तो वह अलग करवा दिया जाएगा। हजारों लोग उत्सुक थे कि उस रात संगीत सुनने आते, लाखों लोग उत्सुक थे। क्योंकि सभी लोग दुखी हैं। उतना बड़ा संगीतज्ञ गांव में आया था। सबको दुख के भूलने का एक अवसर था। कौन उसे चूकना चाहता था? लेकिन इतनी दूर तक उस सुख लेने को कोई राजी न था कि गर्दन कटवाए।

भूल से गर्दन हिल भी सकती है। और हो सकता है कि गर्दन संगीत के लिए न हिली हो, मक्खी बैठ गई हो गर्दन हिल गई हो; किसी और कारण से हिल गई हो। लेकिन राजा पागल था; फिर कोई इस बात में सुनवाई न होगी कि गर्दन किसलिए हिली थी। फिर गर्दन हिलना काफी हो जाएगा, तो लोग नहीं आए। लेकिन फिर भी दो-तीन सौ लोग आए। जो इस मूल्य पर भी सुख चाहते थे--जीवन देने के मूल्य पर, वे आए।

वीणा बजी, कोई घंटे भर तक लोग ऐसे बैठे रहे जैसे मूर्तियां हों। लोगों ने जैसे श्वास भी न ली हो, इतने डरे हुए थे। चारों तरफ नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक खड़े थे, किसी की भी गर्दन एक क्षण में अलग की जा सकती थी। दरवाजे बंद कर दिए गए थे, ताकि कोई भाग न जाए। घंटा बीता, दो घंटे बीते। आधी रात होने के करीब आ गई, और राजा भी हैरान हुआ! उसके सिपाही जो नंगी तलवारें लिए खड़े थे, वे भी हैरान हुए! दस-पंद्रह सिर धीरे-धीरे हिलने लगे। संख्या और बढ़ी, रात पूरी होते-होते कोई चालीस-पचास सिर हिल गए थे। वे पचास लोग पकड़ के बुलवा लिए गए। और राजा ने उस संगीतज्ञ को कहाः इनकी गर्दन अलग करवा दें?

उस संगीतज्ञ ने कहाः नहीं, मैंने यह शर्त बहुत और अर्थों से रखी थी। अब यही वे लोग हैं जो मेरे संगीत को सुनने के सच्चे अधिकारी हैं। कल ये ही लोग सिर्फ आ सकेंगे। राजा ने उन लोगों से कहाः ठीक है कि संगीतज्ञ की शर्त का यह अर्थ रहा हो, लेकिन तुम्हें तो यह पता न था। पागलों तुमने गर्दनें क्यों हिलाईं? तो उन आदमियों ने कहाः जब तक हम मौजूद थे, तब तक गर्दन नहीं हिली। लेकिन जब हम गैर-मौजूद हो गए, फिर का हमें कोई पता नहीं। हमने गर्दन नहीं हिलाई, गर्दन हिली होगी। लेकिन जब तक हमें समझ थी, होश था, तब तक हम गर्दन को सम्हाले रहे। फिर एक घड़ी आ गई होगी, जब हम बेहोश हो गए। हमें फिर कोई भी पता नहीं है। तो भला आप हमारी गर्दनें कटवा लें, लेकिन कसूरवार हम नहीं हैं। क्योंकि हम मौजूद ही नहीं थे, हम बेहोश थे। अपने होश में हमने गर्दन नहीं हिलाई है।

इतनी बेहोशी संगीत से पैदा हो सकती है? जरूर हो सकती है। मनुष्य के जीवन में बेहोशी के बहुत रास्ते हैं। जितनी इंद्रियां हैं उतने ही बेहोश होने के रास्ते भी हैं। प्रत्येक इंद्री का बेहोश होने का अपना रास्ता है। उस इंद्री पर, जैसे कान पर ध्वनियों के द्वारा बेहोशी लाई जा सकती है। और वह बेहोशी पूरे चित्त में फैल जाएगी। अगर इस तरह के स्वर और इस तरह की ध्वनियां कान पर फेंकी जाएं कि कान में जो सचेतना है, जो अवेयरनेस है वह शिथिल हो जाए, तो धीरे-धीरे कान तो बेहोश होगा उसके साथ पूरा चित्त बेहोश हो जाएगा।

क्योंकि कान के पास ही पूरा चित्त इकट्ठा हो जाएगा जब ध्वनियों को सुनेगा तो। कान बेहोश होगा उसके साथ पूरा चित्त भी बेहोश हो जाएगा। आंखें बेहोश करवा सकती हैं। सौंदर्य देख कर आंखें बेहोश हो सकती हैं। आंखें बेहोश हो जाएं, पीछे पूरा चित्त बेहोश हो जाएगा। चित्त को बेहोश करने के उतने ही मार्ग हैं, जितनी इंद्रियां हैं।

और इस भांति अगर हम बेहोश हो जाएं, होश में लौटने पर लगेगा कितना अच्छा हुआ। क्योंकि इस बीच किसी भी दुख का कोई पता नहीं चला। कोई चिंता न थी, कोई एंजायटी न थी; कोई पीड़ा न थी, कोई कष्ट न था; कोई दुख न था, कोई समस्या न थी--नहीं थी, क्योंकि आप ही नहीं थे। आप होते तो ये सारी चीजें होतीं। आप गैर-मौजूद थे इसलिए कोई चिंता न थी, कोई दुख न था, कोई समस्या न थी। दुख का न होना नहीं हुआ था, लेकिन दुख के प्रति जो होश चाहिए वह बेहोश हो गया था। इसलिए उसका कोई पता नहीं चल रहा था। इसे सुख जो लोग समझ लेते हैं वे भूल में पड़ जाते हैं। उनका जीवन एक बेहोशी में बीत जाता है। और आनंद से वे सदा के लिए अपरिचित रह जाते हैं।

तो आप पूछते हैंः "सत्य की खोज की जरूरत क्या है?"

सत्य की खोज की जरूरत इसलिए है कि उसके बिना आनंद की कोई उपलब्धि न कभी किसी को हुई है और न हो सकती है। अगर कोई यह पूछने लगेः आनंद की खोज की भी जरूरत क्या है--तो थोड़ी कठिनाई हो जाएगी। अब तक किसी आदमी ने वस्तुतः ऐसा प्रश्न पूछा नहीं है। दस हजार वर्षों में आदमी ने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन किसी आदमी ने यह नहीं पूछा कि आनंद की खोज की जरूरत क्या है? क्योंकि इस बात के पूछने का मतलब यह होगा कि हम दुख से तृप्त हैं। दुख से कोई भी तृप्त नहीं है।

अगर दुख से आप तृप्त होते तो सिनेमा भी क्यों जाते, संगीत भी क्यों सुनते? वह भी आनंद की एक खोज चल रही है, लेकिन गलत दिशा में। दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता है। हां, आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूर विलीन हो जाता है।

अंधेरे को भूलने से प्रकाश उपलब्ध नहीं होता है। इस कमरे में अंधेरा भरा हो, मैं आंखें बंद करके बैठ जाऊं, और भूल जाऊं अंधेरे को तो भी कमरा अंधेरा ही रहेगा। लेकिन हां, दीया मैं जला लूं तो अंधेरा जरूर

विलीन हो जाता है। दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता, लेकिन आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूरी विलीन हो जाता है।

मैं सोचता हूंः यह तो आप न पूछेंगे कि आनंद की खोज की जरूरत क्या? यह प्रश्न इसीलिए पूछ सके हैं कि सत्य को और आनंद को हम दो चीजें समझते हैं। नहीं; सत्य, आनंद या परमात्मा अलग-अलग बातें नहीं हैं। ये एक ही अनुभव को दिए गए अलग-अलग नाम हैं। जब कोई इस अनुभूति को उपलब्ध होता है तो उसे चाहे तो आनंद कहें, चाहे सत्य कहें। एक बात तय है कि हम जैसे हैं, वैसे होने से हम तृप्त नहीं हैं।

इसलिए खोज की जरूरत है। जो तृप्त है, उसे खोज की कोई भी जरूरत नहीं है। हम जो हैं उससे तृप्त नहीं हैं, हम जहां हैं वहां से हम तृप्त नहीं हैं। एक बेचैनी, एक पीड़ा है भीतर जो निरंतर कहे जा रही है कि कुछ गलत है, कुछ गड़बड़ है। कुछ ठीक नहीं मालूम होता है। वही बेचैनी है, जो कहती है--खोजो। उसे चाहे सत्य नाम दो, चाहे कोई और नाम दो।

और संगीत में भी और शराब में भी उसकी ही खोज चल रही है। खोज उसी की चल रही है, लेकिन गलत, भ्रांत दिशा में। और जब कोई आत्मा की दिशा में उसकी खोज को करता है तो वह ठीक और सम्यक दिशा में उसकी खोज शुरू हो जाती है। क्योंकि दुख को भूलने से आज तक कोई आनंद को उपलब्ध नहीं हो सका है। लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

जिन्होंने उस सत्य की थोड़ी सी भी झलक पा ली है उनके पूरे जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उनका सारा जीवन एक आनंद की, मंगल की वर्षा बन जाता है। फिर वे बाहर संगीत में भूलने नहीं जाते, क्योंकि उनके हृदय की वीणा पर एक संगीत बजने लगता है। फिर वे बाहर सुख की खोज में आंखें नहीं भटकाते हैं, क्योंकि उनके भीतर एक झरना फूट पड़ता है।

जो भीतर दुखी है वह बाहर सुख को खोजता है। और जो भीतर दुखी है वह सुख को पा कैसे सकेगा? लेकिन जो भीतर आनंद से भर जाता है, उसकी बाहर सुख की खोज बंद हो जाती है। क्योंकि जिसे वह खोजता था, वह उसके भीतर उसे उपलब्ध हो गया है।

एक भिखारी एक बहुत बड़ी महानगरी में मरा। वह जिस जगह बैठा हुआ रहा, तीस वर्षों तक जहां बैठ कर उसने भिक्षा मांगी थी, जहां एक-एक पैसे के लिए गिड़गिड़ाया था, उसके मर जाने पर उसकी लाश को म्युनिसिपल के कर्मचारी घसीट कर मरघट तक ले गए। उसके कपड़े, चिथड़ों में आग लगा दी गई, और मोहल्ले के लोगों ने कहाः तीस साल तक इस भिखमंगे ने इस जमीन को खराब और अपवित्र किया है, इसे थोड़ा खुदवा कर इसकी थोड़ी सी भूमि भी बदल दी जाए, थोड़ी मिट्टी बदल दी जाए। और वे हैरान रह गए, जब उन्होंने मिट्टी बदली तो जहां वह भिखारी बैठा रहा, वहीं नीचे खजाना गड़ा मिला। वह उसी खजाने पर तीस वर्षों तक बैठा हुआ एक-एक पैसे के लिए भीख मांग रहा था। लेकिन उसे कोई पता न था कि उस भूमि पर जिस पर वह बैठा है, उसके नीचे खजाना भी हो सकता है।

यह किसी एक भिखारी की कहानी नहीं है, यह हर आदमी की कहानी है। हर आदमी जहां बैठा है, और जहां एक-एक पैसे के सुख के लिए गिड़गिड़ा रहा है, और मांग रहा है, और हाथ फैला रहा है--उसी जमीन पर, उसके ही नीचे बहुत बड़े आनंद के खजाने गड़े हुए हैं। फिर आपकी मर्जी, आपका मन न हो उन्हें खोदने का तो कोई आपको मजबूर नहीं कर सकता। आप गिड़गिड़ाए जाइए, भीख मांगे जाइए।

अगर उस भिखमंगे को जाकर मैंने कहा होताः मित्र गड़े हुए खजाने की खोज करो, और वह मुझसे कहताः क्या जरूरत है गड़े हुए खजाने के खोज की, मुझे काफी आनंद आ रहा है। भीख मांग लेता हूं, मुझे बहुत

मजा आ रहा है। मैं क्यों... मैं तो ऐसी जिंदगी गुजार दूंगा, मैं क्यों खोज करूं गड़े हुए खजाने की? तो मैं भी उससे क्या कहता? कहता ठीक है, भीख मांगो।

लेकिन जो भीख मांग रहा है, वह कहे कि मुझे खजाने की कोई जरूरत नहीं, तो पागल है। नहीं तो भीख क्यों मांग रहा है। सिनेमा में और संगीत में सुख खोज रहा है, और कहे कि आनंद की खोज की मुझे जरूरत क्या है? तो वह पागल है। नहीं तो फिर सिनेमा, संगीत में किसकी भीख मांग रहा है, किसको खोज रहा है? इससे ज्यादा इस संबंध में कहने का कोई भी अर्थ नहीं है।

मैं समझता हूं मेरी बात आप तक पहुंच गई होगी। हम भीख मांगने वाले लोग हैं। और जब कोई हमें खजाने की खबर दे तो हमें विश्वास नहीं आता है। क्योंकि हम एक-एक पैसे की भीख मांगते रहे, खजाने पर विश्वास ही नहीं आता है कि खजाना भी हो सकता है। भीख मांगने वाला मन खजाने पर विश्वास नहीं कर पाता है। उसे खजाना मिल भी जाए तो वह यही सोचेगा, कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं? उसे यह विश्वास नहीं आता कि मैं भीख मांगने वाला और मुझे खजाना भी मिल सकता है! इस बात को भुलाने के लिए वह यह कहना शुरू करता है कि जरूरत क्या है खजाना खोजने की? मैं तो अपनी भीख मांगने में मस्त हूं, मैं क्यों परेशान हो जाऊं? छोटी सी जिंदगी मिली है उसे मैं आनंद की खोज में क्यों गंवा दूं? तो फिर जिंदगी में और क्या करिएगा? अगर आनंद की खोज में भी जिंदगी गवाई जाती है, तो फिर कमाई किस खोज में जाएगी?

एक दूसरे मित्र् ने, एक दूसरे मित्र ने पूछा हैः त्याग का अर्थ पाना है या छोड़ना?

साधारणतः त्याग से हमारे मन में यही खयाल उठता है, कुछ छोड़ना पड़ेगा। कुछ छोड़ना त्याग है। शब्द में यही प्रतिध्वनि है, यही अर्थ छिपा मालूम होता है। लेकिन मैं आपसे कहूंः इस जमीन पर कोई भी आदमी कभी छोड़ने को तैयार नहीं होता है, जब तक कि छोड़ने के पीछे कुछ पा न लिया गया हो। अगर एक आदमी अपने हाथ में कंकड़-पत्थर भरे हुए है, और अगर हम एक झोली खोल दें और हीरे-जवाहरात उसके सामने रख दें तो कंकड़-पत्थर छोड़ देगा।

क्योंकि हाथ खाली करने जरूरी हो जाएंगे। तभी हीरे-जवाहरात मुट्ठी में बांधे जा सकते हैं। हीरे-जवाहरात हाथ में आने को हो जाएं तो कंकड़-पत्थर छोड़ दिए जाते हैं। दुनिया कहेगी... वे लोग जो अभी भी कंकड़-पत्थर हाथ में लिए खड़े हैं, वे कहेंगेः कितना बड़ा त्यागी है। जिन कंकड़-पत्थरों को हम समेट रहे हैं, उसने छोड़ दिए हैं। लेकिन जिन्होंने हीरे-जवाहरात पा लिए हैं, वे कहेंगेः कितना समझदार है। कॉमनसेंस की बात है, इसमें छोड़ना-वोड़ना क्या है। उसके सामने हीरे-जवाहरात आ गए तो उसने कंकड़-पत्थर छोड़ दिए।

लोग कहते हैंः महावीर ने धन छोड़ा, परिवार छोड़ा, महल छोड़ा, राज्य छोड़ा। लोग कहते हैंः बुद्ध ने संपदा छोड़ी, साम्राज्य छोड़ा। लेकिन मैं आपसे कहता हूंः इसके पहले कि उन्होंने कुछ छोड़ा, पाने की कोई बहुत बड़ी झलक उनके प्राणों में भर गई। पाना पहले हो गया, छोड़ना पीछे आया। छोड़ हम तभी सकते हैं जब श्रेष्ठतर की उपलब्धि शुरू हो जाए--तभी, अन्यथा कोई कभी नहीं छोड़ता है।

इसलिए त्याग बहुत ऊपर से देखने पर छोड़ना है, बहुत गहरे से देखने पर पाना है। पाना ही असली बात है वहां। लेकिन हम सारे लोगों को छोड़ना दिखाई पड़ता है। क्योंकि जो छोड़ा जाता है वह स्थूल है, जो पाया जाता है वह सूक्ष्म है। वह दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए हमें लगता है महावीर धन छोड़ रहे हैं, पत्नी छोड़ रहे हैं।

लेकिन महावीर परमात्मा को पा रहे हैं, ये हमें कहीं भी नहीं दिखाई पड़ता। क्योंकि हम पत्नियों को देखने वाले लोग, मकानों की नाप-जोख रखने वाले लोग, रुपये-पैसे का हिसाब रखने वाले लोग... जिसका हम हिसाब रखते हैं, वही हमें दिखाई पड़ता हैकिउफ! कितना बड़ा त्याग कर रहे हैं महावीर! और महावीर वही कर रहे हैं जो हर आदमी रोज अपने घर के कचरे को बाहर फेंक कर, कर जाता है।

लेकिन अगर कचरे को प्रेम करने वाला कोई पागल हो तो वह सड़क पर हैरान हो जाएगा देख कर कि उफ! हद कर दी इस आदमी ने, अपने घर का कचरा बाहर फेंक दिया। कितना महान त्याग किया है! और अगर वह बहुत ही ज्यादा पागल हो तो उस आदमी की एक मूर्ति बना लेगा, और एक मंदिर बना लेगा और उसमें पूजा करने लगेगा कि यह आदमी महात्यागी है।

हम जो चीज पकड़े हुए हैं उसको किसी को भी छोड़ते देख कर हमें हैरानी और आश्चर्य होता है, क्योंकि हर एक का मापदंड हम ही हैं भीतर, हम अपने से तोलते हैं। जिन रुपयों के लिए हम पागल हैं उनको अगर कोई छोड़ देता है तो हम हैरान हो जाते हैं। और उसके भीतर जो उपलब्धि हुई है वह तो हमें दिखाई ही नहीं पड़ती। वह बहुत सूक्ष्म है। उसके लिए जो आंखें चाहिए देखने वाली वे हमारे पास नहीं हैं।

इसलिए दुनिया में वे लोग जिन्होंने सर्वाधिक पाया, हमें सर्वाधिक त्यागने वाले मालूम होते रहे हैं। हमने उनका आधा हिस्सा ही देखा है। हमने त्याग ही देखा है, उनकी उपलब्धि नहीं देखी। और इसका परिणाम यह हुआ कि दुनिया एक अजीब मुसीबत में पड़ गई और समाज एक बहुत गहरी कठिनाई में पड़ गया है। जिन लोगों ने यह त्याग देखा, और जिन लोगों को भीतर की उपलब्धि नहीं दिखाई पड़ी... अनेक लोग अनुकरण करने के लिए खुद भी त्याग करने में पड़ गए। बाहर का उन्होंने छोड़ दिया और भीतर का उन्हें कोई पता नहीं है। वे त्रिशंकु की भांति लटक गए। जो था वह छोड़ दिया, जो मिलने वाला था उसकी उन्हें कोई खबर नहीं है। तब उनका चित्त अत्यंत पीड़ा से भर गया हो तो आश्चर्य नहीं है।

हमारा तथाकथित साधु-संन्यासी ऐसी ही पीड़ा से भर जाता है। फिर न तो उसकी आंखों में शांति दिखाई पड़ती है, न उसके प्राणों में संगीत दिखाई पड़ता है। बल्कि उसका सारा जीवन क्रोध बन जाता है। क्रोध बन जाता है। क्योंकि जो छोड़ दिया उसकी पीड़ा भीतर रह गई, और जो नहीं मिला उसका अभाव भी भीतर रह गया। वह सब तरफ से अभावग्रस्त हो गया। तब वह क्रोध से भर जाए तो आश्चर्य नहीं है। मुनियों का क्रोध ऐसा ही है, आकस्मिक नहीं। और मैंने तो सुना है दक्षिण की एक भाषा में मुनि का अर्थ ही होता है--क्रोधी।

इतना क्रोध किया है मुनियों ने कि उस भाषा में मुनि का अर्थ ही क्रोधी हो गया। क्रोध आ जाएगा स्वभावतः जहां जीवन विफल हो जाएगा। अभाव से भर जाएगा, कुछ भी हाथ में न रहेगा। जो कंकड़-पत्थर थे, वे भी छूट गए; और हीरे-जवाहरात नहीं आए, मुट्ठी खाली रह गई; संसार छूट गया, और सत्य मिला नहीं--तो प्राण क्रोध से न भर जाएंगे तो क्या होगा? इतना क्रोध आ जाएगा, इतनी जलन और इतनी आग पैदा हो जाएगी उसमें सब झुलस जाएगा, पूरा जीवन।

इसीलिए तो साधारणजनों के बीच भी कभी कोई आंखें मुस्कुराती दिखाई पड़ जाती हैं। साधारण जनों के बीच भी कभी चेहरे पर फूल की झलक दिखाई पड़ जाती है, लेकिन साधुओं के चेहरे पर नहीं। बिल्कुल नहीं, कभी नहीं। लेकिन महावीर तो अतिशय आनंद से भरे हुए थे, बुद्ध तो अतिशय आनंद से भरे हुए थे। जरूर कुछ फर्क है। हमने त्याग को समझने में कोई भूल कर दी है। हमने त्याग के अधूरे हिस्से को देखा है--छोड़ने वाले हिस्से को, और हमने पाने वाली दिशा का हमें कोई संकेत नहीं है। इसलिए मैं आपसे कहता हूंः त्याग को समझना उपलब्धि, छोड़ना तो सिर्फ बाई-प्रॉडक्ट है। अपने आप हो जाता है।

छोड़ने की कोशिश में मत पड़ना, अन्यथा जीवन एक रिक्तता बन जाएगी। एक, एक रेगिस्तान बन जाएगा। पाने की कोशिश जीवन में कोई विराटतर उतरे, प्रकाश उतरे--उसकी कोशिश, उसका प्रयत्न। जीवन किसी गहरे को पा ले उसकी आकांक्षा--उस दिशा में जो चलता है वह पा लेता है। और जिस दिन पाता है, उस दिन बहुत कुछ जरूर छूटता है। लेकिन वह छूटना तब एक पीड़ा नहीं होती, बल्कि वह छूटना एक निर्भार होने की तरह आता है। जैसे कोई बोझ उतर गया। जैसे पके पत्ते वृक्ष से गिर जाते हैं तो वृक्ष को कहीं भी पीड़ा नहीं होती। लेकिन कच्चे पत्ते जिस वृक्ष से छोड़ लिए जाते हैं, तोड़ लिए जाते हैं, पीछे पीड़ा और घाव हो जाता है।

जिस चित्त ने आत्मा की दिशा में कुछ पाया नहीं और पदार्थ की दिशा में छोड़ना शुरू कर दिया, वह अपने जीवन के वृक्ष से कच्चे पत्ते तोड़ रहा है। उसके पीछे घाव पैदा हो जाएंगे, दुख पैदा हो जाएंगे। और उस दुख का बदला वह सबसे लेगा। इसलिए साधु-संन्यासी संसार के प्रति गाली देते हुए मालूम पड़ते हैं। क्रोध से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। सबको नरक भेजने की आकांक्षा करते रहते हैं। खुद को स्वर्ग जाने का इंतजाम कर लिया है, शेष सब पापियों को नरक भेजने का रस लेते रहते हैं।

यह क्रोध है भीतर। सारी दुनिया से बदला लेना है उन घावों का जो उनके, उनके प्राणों पर बन गए हैं। अन्यथा, क्या कोई साधु किसी को पापी समझ सकता है? क्या कोई साधु किसी को नरक भेजने की योजना का विचार कर सकता है? क्या कोई साधु नरकों में जलाए जाने वाले लोगों, कीड़ों-मकोड़ों की सारी परिकल्पना करके शास्त्र लिख सकता है? इसमें क्या रस हो सकता है किसी साधु चित्त को? साधु चित्त तो सभी को स्वर्ग ले जाने की आकांक्षा से भरा होगा। नरक की कोई योजना साधु चित्त में नहीं हो सकती। फिर किन्होंने ये सारे नरक के कष्ट ईजाद किए हैं?

उन्हीं लोगों ने जिनके हाथ रिक्त हो गए हैं संसार से। इसलिए जिनके हाथ भरे हैं, उनके प्रति वे क्रोध से भरे हैं। उनसे बदला लेना चाहते हैं। और बदला लेने के लिए वे क्या करें? वह उनको पापी कह रहे हैं, कंडेम्न कर रहे हैं, निंदा कर रहे हैं, नरक भेज रहे हैं। इस तरह बदला ले रहे हैं, इस जन्म में नहीं ले सकेंगे तो अगले जन्म में लेने की योजना बना रहे हैं।

लेकिन जिसके हृदय में आनंद की किरण उतरी होगी, उसका हृदय तो सबके लिए शुभकामनाओं से भर जाएगा। उसके हृदय में तो किसी को भी बुरा देखने की संभावना नहीं रह जाएगी। ये जो हमारे त्याग का छोड़ना ही आधार बन गया, उसके कारण ये सारी बात पैदा हुई। और इसलिए जिन कौमों ने त्याग को छोड़ना समझा, वे दयनीय हो गईं। दीन-हीन हो गईं। उनके भीतर एक उदासी भर गई। जीवन के प्रति सारा रस खो गया। हम खुद ऐसी ही दुर्भाग्य से भरी कौमों में से एक हैं जिनके भीतर से सारा आनंद, सारा उल्लास छिन गया।

तो मैं यह नहीं कहता हूं कि संसार को छोड़ दें, मैं ये कहता हूंः परमात्मा को पाएं। और उस पाने में ही यह घटना अनायास घटित होगी कि जो व्यर्थ है वह छूटता चला जाएगा, छोड़ना नहीं पड़ेगा। जिस चीज को छोड़ना पड़ता है, उसमें कष्ट है; जो छूट जाती है, उसमें आनंद है।

एक छोटी सी कहानी कहूं उससे शायद मेरी बात खयाल में आ जाए। बहुत प्रीतिकर है मुझे वह कथा--बहुत पुरानी बहुत अर्थपूर्ण है।

एक पति जंगल से लौट रहा है, उसकी पत्नी उसके पीछे है। वे लकड़ियां काट कर आ रहे हैं, और पांच-सात दिन के भूखे हैं। और उनका नियम है कि वे लकड़िया काट लें और बेचें तो जो मिल जाए उसी से भोजन करते हैं। पांच-सात दिन पानी गिरता रहा और वे जंगल नहीं जा सके और उन्हें उपवास करना पड़ा है। पति भी

थका-मांदा, टूटा-हारा लकड़ियां सिर पर ढोए चल रहा है, पत्नी पीछे घसीटती होगी। थोड़ी दूर वह भी लकड़ियों का बोझ लिए आती है। और पति ने देखा की राह के किनारे ही पगडंडी पर अशर्फियों से भरी हुई एक थैली पड़ी है। स्वर्ण अशर्फियां कुछ बाहर गिर गई हैं, कुछ थैली के भीतर हैं। उसके मन को एकदम से खयाल आया मैंने तो स्वर्ण पर विजय पा ली, मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया। लेकिन पत्नी का क्या भरोसा? सात दिन की भूखी है, मन में लालच आ जाए, लोभ आ जाए। और सोचे कि उठा लें। न भी उठाए तो भी कोई बात नहीं, मन में भाव भी आ जाए तो व्यर्थ ही पाप होगा। उसने उन अशर्फियों को पास के ही एक गड्ढे में धकेल कर मिट्टी से ढंक दिया। लेकिन वह उठ भी न पाया था और मिट्टी से हाथ भी साफ न कर पाया था कि पत्नी आ गई। उसने पूछा, क्या करते हैं? क्या कर रहे हैं? झूठ नहीं बोलना है, इसका उसका नियम था। इसलिए सच बोलना पड़ा। उसने कहा कि यहां मैंने अशर्फियां पड़ी देखीं। सोचा कि मैंने तो स्वर्ण का त्याग कर दिया है, लेकिन कहीं तेरे मन में लोभ न आ जाए इसलिए उन्हें मिट्टी में ढांक दिया है, ताकि तुझे वे दिखाई न पड़ें। वह पत्नी हंसने लगी और उसने कहाः कैसे हैं आप? आपको स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है? कैसे हैं आप? मिट्टी पर मिट्टी डालते हुए शर्म भी नहीं मालूम पड़ती।

ये दो आदमी हैं। इसमें पहला आदमी त्यागी है, उसने त्याग किया है स्वर्ण का। और जिसने त्याग किया है, उसे स्वर्ण दिखाई पड़ता रहेगा। क्योंकि जबरदस्ती अपने से छुड़ाया है। बल्कि उसे और ज्यादा होकर दिखाई पड़ता रहेगा। अगर उस रास्ते से कोई भोगी निकलता होता तो शायद वे स्वर्ण अशर्फियां उसे शायद दिखाई भी न पड़ती। लेकिन जिसने सोने को छोड़ा है, और जिसने मन के अपने सब तरफ से दीवाल बनाई हैं सोने के विरोध में उसे तो सोना एकदम दिखाई पड़ेगा।

सारी दुनिया में साधु अश्लील चित्रों के बड़े विरोध में होते हैं। आप सड़क से निकलते जाते हैं, आपको नहीं दिखाई पड़ते दीवाल पर अश्लील पोस्टर लगे हुए। उनको एकदम दिखाई पड़ते हैं। बाकी उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें वही-वही दिखाई पड़ते हैं। चित्त जिस चीज को जबरदस्ती छोड़ा है, वह बहुत जोर से आकर्षित करती है कि देखो मुझे।

एक मेरे एक मित्र अमरीका से आए और खजुराहो देखने गए। उन दिनों उस प्रदेश में एक शिक्षामंत्री थे, वे भी मेरे मित्र थे। वह शिक्षामंत्री उन अमरीकन युवक को, अमरीकन उस चित्रकार को लेकर खजुराहो के मंदिर और मूर्तियां दिखाने ले गए। लेकिन शिक्षा मंत्री के मन में पूरे समय डर था, अश्लील मूर्तियां हैं, नग्न मैथुन की मूर्तियां हैं। क्या सोचेगा ये अमरीकी युवक? क्या कहेगा कि कैसी गंदी है यह भारतीय संस्कृति, जिसकी इतनी बातें करते हैं, और ये मंदिर बनाते हैं! और हमारे चित्रों और हमारी फिल्मों की निंदा करते हैं, जो इनके सामने कुछ भी नहीं? क्या सोचेगा यह अमरीकी युवक? ऐसा वह शिक्षामंत्री मन में सोचते रहे।

सारी मूर्तियां, मंदिर दिखा कर वापस लौटते थे तो क्षमायाचना की उनसे, कहा कि माफ करना, यह हमारे देश की संस्कृति की मूल धारा नहीं हैं। (अस्पष्ट 39 : 42 प्रभाव है,)यह कोई हमारे मुल्क की केंद्रीय धारणा नहीं है कि हमारे सभी मंदिर ऐसे हों। ये तो कभी हर मुल्क में गलत लोग पैदा हो जाते हैं, उन गलत लोगों ने अपने भोग-विलास के लिए यह सब बना लिया होगा। ये अश्लील मूर्तियां हमारी प्रतीक नहीं हैं, हमारी प्रतिनिधि नहीं हैं। उस अमरीकी युवक ने कहाः क्या कहा, अश्लील? तो फिर मुझे फिर से जाकर देखना पड़ेगा। मुझे तो कोई अश्लीलता दिखाई न पड़ी, इतनी सुंदर, इतनी महिमायुक्त मूर्तियां मैंने कभी देखी नहीं। वह फिर वापस गया कि मुझे फिर से देखना पड़ेगा, क्या कहते हैं अश्लील? लेकिन इनका चित्त, इनका चित्त डरा हुआ, क्षमा याचना से भरा हुआ था। ये पूरे वक्त वहां परेशान ही रहे होंगे।

यह हमारे त्यागी का चित्त है। नैतिक पुरुष का चित्त है। जो जबरदस्ती चीजों को छोड़ता है तो फिर उसे वही-वही चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं, और सब दिखाई पड़नी बंद हो जाती हैं। उन्हें उन मूर्तियों में न तो सौंदर्य के दर्शन हुए, न उन मूर्तियों में कला के दर्शन हुए, न उन मूर्तियों का अनुपात उन्हें दिखाई पड़ा, न उन मूर्तियों में किए गए श्रम, न उन मूर्तियों में प्रकट किए गए भावों का उन्हें कोई दर्शन हुआ--उन्हें तो सिर्फ उन मूर्तियों में सेक्सुअलिटी दिखाई पड़ी, अश्लीलता दिखाई पड़ी। लेकिन वह जो चित्रकार आया था, वह दंग रह गया था, वह पागल हो गया था, वह दीवाना हो गया था--एक-एक मूर्ति अनूठी थी, और उसमें इतना सौंदर्य था, इतना भाव था, इतना अर्थ था कि किसको फुरसत थी कि उसमें सेक्सुअलिटी भी देखे, उसमें अश्लीलता भी देखे। उसने कहा मुझे फिर से जाने दें, आपने बड़ी नई बात कही। इस पर मेरा ध्यान नहीं गया। मैं फिर उसे जाकर देखूं।

लेकिन एक साधु को ले जाएं उसी मंदिर में तो वह आंखें बंद कर लेगा। उसे वहां जो दिखाई पड़ेगा वह घबड़ा देगा। वह क्या दिखाई पड़ेगा? जो मन में छिपा रहा है--वही, वही दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। वह पति त्यागी था, इसलिए उसे स्वर्ण दिखाई पड़ा। उस पत्नी के जीवन में एक मैच्योरिटी आई, एक परिपक्वता आई थी। उसने जीवन के किसी विराटतर सत्य को जाना था जो स्वर्णों का भी स्वर्ण है। उसके समक्ष सोना मिट्टी हो गया था। अब सोने के दिखाई पड़ने का कोई सवाल न था, न छोड़ने का कोई सवाल था। उसने कहा कैसे हो? पागल हो, मिट्टी पर मिट्टी डालते शर्म नहीं आती!

और विराटतर, और गहरे भी मूल्य हैं जीवन में जिनके समक्ष स्वर्ण मिट्टी हो जाता है। और जब मिट्टी हो जाता है तब फिर उसे छोड़ना नहीं पड़ता है, मिट्टी को कौन छोड़ता है? छूट जाती है। उसे कौन ढोता है? कोई नहीं ढोता है। जब तक वह स्वर्ण बना है तभी तक छोड़ने का भी सवाल है। इसलिए त्याग मेरी दृष्टि में छोड़ना नहीं है, पाना है। उस पाने के पीछे छोड़ना भी फलित होता है, लेकिन वह गौण है, और विचारणीय भी नहीं है। उसका अत्यधिक विचार हमारी त्याग की सारी दृष्टि को ही गलत कर दिया है। हमारा सारा धर्म छोड़ना ही छोड़ना, छोड़ना ही छोड़ना हो गया है। और जहां छोड़ना ही छोड़ना हो जाए वहां सब, सब जीवन रिक्त हो जाता है। सब जीवन रिक्त हो जाता है।

यह जो हमारे छोड़ने की दृष्टि है, उसने हमारे सारे जीवन को सूना और खाली कर दिया है। धर्म एक मरुस्थल की भांति दिखाई पड़ता है, फूलों से भरी हुई एक बगिया की भांति नहीं। उसमें फिर आनंद की पुलक नहीं है। सौंदर्य का रस नहीं है। उसमें अंतर्वीणा के कोई स्वर भी नहीं हैं। सब तोड़ देना है, सब छोड़ देना है। नहीं, छोड़ने की दृष्टि भ्रांत है। भूल भरी है। पाना है, सब पाना है। गहरे से गहरा जो जीवन में है उसे उपलब्ध करना है।

निश्चित ही जो जितने गहरे को उपलब्ध करेगा, उतने बाह्य को छोड़ता चला जाएगा। जिसे पहाड़ की यात्रा करनी हो उसे बोझ को कम कर लेना होता है। जितनी ऊंची चोटी चढ़नी हो उतना ही बोझ पीछे छोड़ देना होता है। एवरेस्ट पर जो आदमी पहुंचा, उसके पास कुछ भी नहीं था उसका। सब बोझ छोड़ देना पड़ा। सब बोझ छोड़ देना पड़ेगा। जमीन पर चलने के लिए बोझढोया जा सकता है, उतार उतरना हो तो और भी ज्यादा बोझढोया जा सकता है। लेकिन चढ़ाव चढ़ना हो तो बोझ कम होता जाता है, उसे करना नहीं पड़ता। ऊपर की चोटी पुकारने लगती है, और बोझ छूटने लगता है। ऊपर के शिखर बुलाने लगते हैं, और बोझ छूटने लगता है। क्योंकि ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती हैं।

शिखर का आमंत्रण जिसने स्वीकार किया है उसे फिर बोझ के मोह को छोड़ देना पड़ता है। और इसमें कुछ टूटता नहीं, कोई पीड़ा नहीं होती। क्योंकि प्रत्येक बोझ का छोड़ना कदमों को निर्भार कर देता है। शक्तिशाली बना देता है। ऊपर उठने में समर्थ बना देता है। एक तरफ बोझ कम होता है, दूसरी तरफ उड़ने की क्षमता उपलब्ध होती चली जाती है। एक तरफ बोझ कम होता है, और कदम नये पर्वतों को उपलब्ध होने लगते हैं।

तो जिसने परमात्मा के पर्वत पर चढ़ने की आकांक्षा की हो, उससे अंधेरी घाटियां अपने आप छूट जाती हैं। जिसने सूरज की तरफ यात्रा शुरू की हो, उससे अंधेरे के रास्ते अपने आप छूट जाते हैं। जिसने सत्य की तरफ चलना चाहा है, असत्य उससे गिरता जाता है--जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से।

लेकिन जो इससे उलटी प्रक्रिया में लग गया है, किसी पर्वत पर तो जाता नहीं, जमीन पर जीता है, और बोझ छोड़ देता है; उससे कच्चे पत्ते टूटने शुरू हो जाते हैं। और उसमें इतनी पीड़ा और दुख पैदा होता है कि उसका जीवन एक नरक बन जाता है। और फिर इसका बदला वह सबसे लेता है। इसका बदला वह लेगा ही। इसका क्रोध, इसका प्रतिशोध वह सबसे भंजाएगा ही।

त्याग को सत्य जानना जब उसके भीतर आनंद की ज्योति-शिखा जलती हो। और झूठ जानना अगर उसके आस-पास क्रोध की अग्नि हो। त्याग को सच जानना अगर उसके भीतर से किसी असीम संगीत के स्वर सुनाई पड़ते हों। और झूठ जानना अगर उसके चारों तरफ क्रोध से उत्तप्त वाणी दिखाई पड़ती हो। मैं समझता हूं मेरी बात खयाल में आई होगी।

एक और अंतिम प्रश्न-चर्चा करूंगा, फिर कुछ और प्रश्न बच जाएंगे वह कल सुबह और परसों सुबह आपसे बात करूंगा।

पूछा हैः आप सब धर्मों के विरुद्ध हैं, तो क्या सब महापुरुष झूठे हैं या कि आप?

मैं निश्चित ही सब धर्मों के विरोध में हूं, क्योंकि मैं धर्म के पक्ष में हूं। जिसे धर्म के पक्ष में होना है, उसे धर्मों के विरोध में होना पड़ेगा। धर्म एक है। हिंदू और मुसलमान, ईसाई और जैन इसलिए धर्म नहीं हो सकते। जहां अनेकता है, फिर वहां धर्म नहीं हो सकता। रिलीजंस के मैं विरोध में हूं, क्योंकि मैं रिलीजन के पक्ष में हूं।

धर्म जीवन के भीतर जो चैतन्य है, उसका विज्ञान है। पदार्थ का विज्ञान एक है। कैमिस्ट्री हिंदुओं की अलग होती है, मुसलमानों की अलग? फिजिक्स भारत की अलग और इंग्लैंड की अलग होती है? और गणित भारत का अलग और चीनियों का अलग होता है? नहीं, प्रकृति के नियम एक हैं। वे चीनी और भारतीय में भेद नहीं करते। वे पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी में अंतर नहीं करते। प्रकृति की भाषा एक है--वह हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू में फर्क नहीं करती।

अगर प्रकृति के और पदार्थों के नियम एक हैं तो क्या परमात्मा के नियम अनेक हो सकते हैं? आत्मा के नियम अनेक हो सकते हैं? उसके नियम भी एक हैं। वे नियम भी युनिवर्सल हैं। उन नियमों को हम अब तक नहीं खोज पाए इसलिए कि ये हमारे धर्मों के अत्यधिक मोह ने धर्म को जन्मनें नहीं दिया। कोई हिंदू है, कोई जैन, कोई मुसलमान, कोई ईसाई। और वे सब इतने अतिशय रूप से किसी पंथ, किसी पथ, किसी शास्त्र, किसी शब्द से बंधे हैं--कि वे युनिवर्सल, सार्वलौकिक सत्य को देखने में समर्थ नहीं रह गए हैं। क्योंकि सार्वलौकिक सत्य हो

सकता है उनके शास्त्र को कहीं-कहीं गलत छोड़ जाए। कहीं-कहीं गलत कर जाए। तो वे अपने शास्त्र के इतने पक्ष में हैं कि सत्य के पक्ष में नहीं हो सकते। इसलिए दुनिया के पंथों ने, दुनिया में सार्वलौकिक धर्म, युनिवर्सल रिलीजन को पैदा नहीं होने दिया।

मैं पांथिकता के विरोध में हूं। सांप्रदायिकता के विरोध में हूं, धर्म के विरोध में नहीं हूं।

धर्म के विरोध में तो कोई हो ही नहीं सकता है। क्योंकि जो चीज एक ही है उसके विरोध में नहीं हुआ जा सकता। विरोध में होते से दो चीजें हो जाएंगी। सत्य के विरोध में कोई भी नहीं हो सकता, सिद्धांतों के विरोध में हो सकता है। सत्य के विरोध में कोई भी नहीं हो सकता, शास्त्रों के विरोध में हो सकता है। तो मैं उस सत्य की, उस धर्म की आपसे बात कर रहा हूं--जो एक है, और एक ही हो सकता है।

इसलिए अनेक से जो हमारा बंधा हुआ चित्त है उसे मुक्त करना जरूरी है। और यह आपसे किसने कहा कि मैं महापुरुषों के विरुद्ध हूं? यह आपसे किसने कहा? यह आपसे किसने कह दिया कि मैं महापुरुषों के विरोध में हूं? नहीं, लेकिन एक बात के विरोध में मैं जरूर हूं। जब तक हम दुनिया में महापुरुष बनाए चले जाएंगे, तब तक छोटे पुरुष भी पैदा होते रहेंगे। वे बंद नहीं हो सकते। जब हम एक व्यक्ति को महान कहते हैं तो हम शेष सब को क्षुद्र और नीचा कह देते हैं। यह हमें दिखाई ही नहीं पड़ता कि एक आदमी के सम्मान में शेष सबका अपमान छिपा होता है। जब हम एक व्यक्ति को पूज्य बना देते हैं, तो शेष सबको... ! और जब हम एक की मंदिर में प्रतिष्ठा कर देते हैं, तो बाकी सबकी... !

ये महानताएं क्षुद्रताओं पर खड़ी हैं। अगर दुनिया से क्षुद्रताएं मिटानी हों तो स्मरण रखिए, महानताओं को भी विदा कर देना होगा। नहीं तो ये दोनों बातें साथ-साथ जिंदा रहेंगी। मैं महापुरुषों के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन मनुष्य के भीतर जो महान है, उसके पक्ष में हूं। और हर मनुष्य के भीतर महान छिपा है। किसी में प्रकट, किसी में अप्रकट। लेकिन जिसमें अप्रकट है उसे भी नीचा कहने का कोई कारण नहीं।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म की एक कथा कही है। पिछले जन्म में, उन्होंने अपने पिछले जन्मों की बहुत सी कथाएं कही हैं। उन्होंने कहा है कि एक जन्म में मुझे खबर मिली कि एक बहुत बड़ा बुद्ध पुरुष, एक दीपंकर बुद्ध नाम का व्यक्ति नगर में आ रहा है, तो मैं उसके पास गया। मैंने दीपंकर बुद्ध के जाकर चरण स्पर्श किए। और मैं खड़ा भी न हो पाया था कि मैं आश्चर्य से भर गया और मेरी समझ में न आया कि क्या हुआ? मैं खड़ा भी न हो पाया था कि दीपंकर बुद्ध झुके, और उन्होंने मेरे पैर पड़ लिए। तो बुद्ध ने कहाः मैं घबड़ाया और मैंने उनसे कहा, मैं अपके पैर पडूं यह तो ठीक, लेकिन आप मेरे पैर पड़ें... ! ये तो समझ में आने वाली बात न हुई।

तो दीपंकर ने कहा कि तुम्हें दिखाई पड़ता है कि मैं बुद्धपुरुष हूं, तुम अज्ञानी हो। लेकिन जिस दिन से मैंने ज्ञान पाया उस दिन से मुझे कोई अज्ञानी दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारे भीतर भी मैं उसी ज्योति को जलते देखता हूं, जिसे अपने भीतर। मैं उसी को प्रणाम कर रहा हूं। तुम मुझे नहीं दिखाई पड़ रहे, मुझे वही ज्योति दिखाई पड़ रही है। एक दिन ऐसा आएगा कि तुमको भी तुम दिखाई न पड़ोगे, और वही ज्योति दिखाई पड़ेगी। लेकिन बुनियादी रूप से कोई फर्क नहीं है। एक वृक्ष खड़ा हुआ है, और उसके ही पास एक छोटा सा बीज पड़ा हुआ है। बीज और वृक्ष में कोई फर्क है? वृक्ष महान है, और बीज क्षुद्र है? किसने कहा?

और अगर बीज क्षुद्र है तो वृक्ष महान हो कैसे जाएगा? इसी बीज से जन्मेगा और बड़ा होगा और महान हो जाएगा! और क्षुद्र से जन्मेगा और महान हो जाएगा? नहीं अगर बीज क्षुद्र है तो फिर वृक्ष कभी महान नहीं हो सकता। और अगर वृक्ष महान है तो बीज अपने में सारी महानता लिए बैठा है। फर्क, फर्क केवल अभिव्यक्ति

का है, महानता का नहीं। तो दुनिया में छोटे और बड़े लोग नहीं हैं, दुनिया में बीज और वृक्ष हैं। लेकिन, लेकिन बीज होना क्या कुछ बुरा होना है? और बीज ही अगर बुरा होगा, तो फिर, फिर वृक्ष भी भला नहीं हो सकता।

इसलिए मैं इस तरह की कैटेगरीज के, इस तरह के वर्गीकरण के विरोध में हूं कि फलां आदमी महान है और फलां आदमी छोटा और क्षुद्र है। इतना ही फर्क हैः कोई वृक्ष है, कोई बीज है। बीज पूरी गरिमा से भरा हुआ है, आज नहीं कल वृक्ष का जन्म होगा। महापुरुष और छोटे पुरुष, ऐसा समाज में वर्ग विभाजन नहीं चाहिए। हमने न केवल संपत्ति बांट ली है, हमने परमात्मा भी बांट लिया है; हमने न केवल गरीब और अमीर पैदा कर दिए हैं, हमने छोटे और बड़े आदमी भी पैदा कर दिए हैं।

कोई आदमी बड़ा नहीं है, क्योंकि कोई आदमी छोटा नहीं है। और इस सत्य को जब तक हम प्राण-प्राण तक नहीं पहुंचा दें, तब तक दुनिया में इक्के-दुक्के महापुरुष पैदा होते रहेंगे। लेकिन महान मनुष्यता का जन्म नहीं होगा। इक्के-दुक्के महापुरुषों का प्रश्न नहीं है, पूरा नगर गंदगी से भरा हो और उसमें एक फूल खिल जाए तो क्या करिएगा उस फूल का? उससे क्या होता है? क्या फर्क होता है? अभी तक ऐसे ही हुआ। समाज ने महान पुरुष पैदा किए लेकिन महान मनुष्यता अभी तक पैदा नहीं हो पाई है।

और जब तक हम इन इक्के-दुक्के महापुरुषों को ही आदर और श्रद्धा देते रहेंगे, और मनुष्य के भीतर समस्त मनुष्यता के भीतर छिपा हुआ जो महान तत्व है, उसको आदर न देंगे; तब तक दुनिया में दूसरे तरह की मनुष्यता का जन्म नहीं हो सकेगा। मैं नहीं चाहता कि कोई आदमी किसी की पूजा करे। क्योंकि मुझे दिखाई पड़ता हैः जिसकी वह पूजा कर रहा है, वह उसके भीतर बैठा ह ुआ है। यह किसी महापुरुष के प्रति अनादर नहीं है। बल्कि समस्त के भीतर छिपा हुआ जो महान है--उसकी स्वीकृति है। इसमें किसी का अपमान और अनादर नहीं है।

और महावीर और बुद्ध इससे दुखी न होंगे कि आप भी महावीर और बुद्ध हो गए। इससे आनंदित होंगे, इससे प्रसन्न होंगे। इसी के लिए तो जीवन भर वे चेष्टा कर रहे हैं, दौड़ रहे हैं गांव-गांव, नगर-नगर कि--जो उनके भीतर जगा है, वह आपके भीतर जग आए। और आप क्या कर रहे हैं? आप उनकी पूजा कर रहे हैं। आप कह रहे हैं तुम महान हो, हम क्षुद्र हैं। हम ना-कुछ हैं, तुम सब कुछ हो। हम तो इसी लायक हैं कि तुम्हारे पैरों में पड़े रहें।

यह हमारी जो तरकीबें हैं, ये हमारे भीतर जो महानता सोई है उसे जगाने से बचने के उपाय हैं। तो हम एक महापुरुष को पकड़ लेते हैं उसकी पूजा करते हैं, और निपट जाते हैं। यह भूल जाते हैं कि महापुरुष जब हमारे बीच पैदा होता है तो वह हमारे बीच हमसे पूजा पाने को नहीं, बल्कि हर महापुरुष एक अर्थों में हमारे भीतर स्प्रेरणा, स्प्रतीती और आकांक्षा जगाने को कि--जो उसके भीतर विकसित हुआ है, वह हमारे भीतर भी विकसित हो सकता है।

मैं किसी महापुरुष के विरोध में क्यों होने लगा। मैं तो किसी छोटे पुरुष के विरोध में भी नहीं हूं। लेकिन यह सोचने का ढंग गलत है। एक दुनिया चाहिए जहां प्रत्येक के भीतर जो श्रेष्ठतर है वह विकसित हो, ऐसी दुनिया नहीं चाहिए जहां एकाध श्रेष्ठ व्यक्ति पैदा हो और शेष लोग सिर्फ उसकी पूजा करें, प्रार्थना करें, स्तुति करें। उसे महान कहें, और भगवान कहें। ऐसी दुनिया नहीं चाहिए। ऐसी दुनिया में हम जी चुके दस हजार वर्षों से। और उससे कोई हित नहीं हुआ। अब तो हमें सर्वजन के बीच, सबके भीतर जो छिपा है उसे ही, उसे ही आदर और सम्मान देना चाहिए, ताकि वह विकसित हो सके। और बहुत से प्रश्न रह गए, उनकी मैं कल सुबह, परसोंचर्चा करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर जो परमात्मा छिपा है, उसे प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

जीवन में असुरक्षा का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं आज की चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

अभी सुबह ही थी और गांव के बच्चे स्कूल पहुंचे ही थे कि अनायास ही उस स्कूल के निरीक्षण को एक इंस्पेक्टर का आगमन हो गया। वह स्कूल की पहली कक्षा में गया और उसने जाकर कहाः इस कक्षा में जो तीन विद्यार्थी सर्वाधिक कुशल, बुद्धिमान हों उनमें से एक-एक क्रमशः मेरे पास आए और जो प्रश्न मैं दूं, बोर्ड पर उसे हल करे। एक विद्यार्थी चुपचाप उठ कर आगे आया, उसे जो प्रश्न दिया गया उसने बोर्ड पर हल किया और अपनी जगह जाकर वापस बैठ गया। फिर दूसरा विद्यार्थी उठ कर आया, उसे भी जो प्रश्न दिया गया उसने हल किया और चुपचाप अपनी जगह जाकर बैठ गया। लेकिन तीसरे विद्यार्थी के आने में थोड़ी देर लगी। और जब तीसरा विद्यार्थी आया भी तो वह बहुत झिझकते हुए आया, बोर्ड पर आकर खड़ा हो गया। उसे सवाल दिया गया, लेकिन तभी इंस्पेक्टर को खयाल आया कि यह तो पहला ही विद्यार्थी है जो फिर से आ गया है। तो उसने उस विद्यार्थी को कहाः जहां तक मैं समझता हूं तुम पहले विद्यार्थी हो जो फिर से आ गए। उस विद्यार्थी ने कहाः माफ करिए, हमारी कक्षा में जो तीसरे नंबर का होशियार लड़का है वह आज क्रिकेट का खेल देखने चला गया है, मैं उसकी जगह हूं। वह मुझसे कह गया है, मेरा कोई काम हो तो तुम कर देना।

इंस्पेक्टर यह सुनते ही आगबबूला हो गया और बहुत जोर से चिल्लाने लगा और बहुत नाराज हुआ। उसने कहाः यह बात भी कभी देखी और सुनी गई है कि एक विद्यार्थी के प्रश्न दूसरा विद्यार्थी हल करे? या एक की परीक्षा दूसरा दे? इससे ज्यादा अनैतिक बात और क्या हो सकती है? और उसने विद्यार्थियों को काफी समझाया कि यह बहुत भूल भरी बात है। और तब शिक्षक की तरफ वह मुड़ा और उसने कहाः महानुभाव! आप खड़े-खड़े देख रहे हैं और आप रोक नहीं सके। और आप, मुझे मूर्ख बनाया जा रहा है, यह भी चुपचाप खड़े देख रहे हैं। आपने यह भी नहीं कहा कि यह विद्यार्थी एक बार आ चुका है। वह शिक्षक भी विद्यार्थियों पर नाराज हुआ।

लेकिन अंत में इंस्पेक्टर ने पूछाः मुझे ऐसा मालूम पड़ता है जैसे आप इन विद्यार्थियों को पहचानते नहीं। उस शिक्षक ने कहाः माफ करिए, असल में मैं इस क्लास का शिक्षक नहीं हूं। इस क्लास का शिक्षक क्रिकेट का खेल देखने चला गया है और वह मुझसे कह गया है कि मैं उसकी जगह थोड़ी क्लास देख लूं। इंस्पेक्टर तो पागल हो गया। उसने कहाः यह क्या, यह क्या स्थिति है? आप भी धोखा दे रहे हैं मुझे, आप दूसरी क्लास के शिक्षक हैं और आप यहां खड़े हैं? उसने शिक्षक को भी बहुत भला-बुरा कहा। और तब अचानक वह थोड़ा नरम हो गया और उसने कहाः वह तो अच्छा हुआ, आपका सौभाग्य है कि आज असली इंस्पेक्टर निरीक्षण करने नहीं आया, वह क्रिकेट का खेल देखने गया है। मैं तो असली इंस्पेक्टर का मित्र मात्र हूं। अगर आज असली इंस्पेक्टर आया होता तो तुम्हारी खैरियत न थी।

इस घटना से इसलिए आज की बात शुरू करना चाहता हूं कि हम सारे लोग एक ही नाव पर सवार हैं। हम सब एक से ही दोषी और जिम्मेवार हैं। यहां यह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है कि हम दूसरों की तरफ इशारे उठाएं, बल्कि यही महत्वपूर्ण है कि हम अपनी तरफ लौट कर देख लें कि हम किस स्थिति में हैं? हम सब एक

ही नाव पर सवार हैं और एक सी हमारी जिम्मेवारी है इस समाज को और इस दुनिया को बनाने में। और इस दुनिया के अंधकार में हमारा भी योगदान है, हम भी साझीदार हैं।

बहुत आसान है कि हम दूसरों की भूलें देख लें, बहुत आसान है कि हम दूसरों की नग्नता देख लें, वह बहुत कठिन बात नहीं है। आसान है, सुखद और प्रीतिकर है। क्योंकि जब भी हम दूसरों की भूलें और दूसरों के अंधकार से भरे पहलू देखते हैं तो हमें एक खुशी मिलती है। वह खुशी दो कारणों से मिलती है। एक तो इस कारण से कि दूसरों के जीवन के अंधकार स्थल देखने पर हमारे खुद के जीवन के अंधकार स्थल अत्यंत सामान्य हो जाते हैं, ऐसा प्रतीत होता है। सभी लोग ऐसे हैं तो मुझमें कोई विशेष खराबी नहीं। दूसरी बात, दूसरों के जीवन के अंधकार को देखने से हमारे खुद के भीतर, हमारे खुद के जीवन में जो नग्न-तथ्य हैं, उनको देख कर जो पीड़ा होनी चाहिए, जो आत्म-दंश होना चाहिए, जो चिंतन होना चाहिए वह पैदा नहीं होता है।

कल मैंने आपसे यह कहा कि धर्म के रास्ते पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के तथ्यों को देख लेना जरूरी है। दूसरों के जीवन के तथ्यों को तो हम सारे लोग देखते हैं, अपने जीवन को लेकिन नहीं। दूसरों के जीवन में तो हम झांकते हैं लेकिन अपने जीवन में नहीं। और तब, तब हमारे जीवन में धर्म का कोई अवतरण संभव नहीं हो सकता है। धर्म आत्म-आलोचना है। धर्म है स्वयं के संबंध में अत्यंत तीखी और पैनी आंखों से दर्शन, स्वयं का स्पष्ट विश्लेषण, स्वयं के प्रति अत्यंत सजग जागरूकता।

और जब तक हम स्वयं को उसकी पूरी सच्चाई में न जान लें, तब तक स्वयं के परिवर्तन का कोई मार्ग नहीं है। जो व्यक्ति अपने को बदलने चला है, किसी क्रांति से गुजरने चला है, अपने जीवन को आलोकित करने की जिसकी प्यास पैदा हुई है, उसे स्वयं को बहुत बारीक आंखों से देख लेना आवश्यक है। और जैसा मैंने कल आपसे कहाः हम तो स्वयं के तथ्यों को छिपाते हैं, हम तो उन्हें ढांकते हैं; किसी दूसरे से ढांकते होते तो भी एक बात थी, हम अपने से ही उन तथ्यों को ढांक लेते हैं। हम खुद को ही धोखा देते हैं। अधर्म की परिभाषा मेरी आंखों में यही हैः जो खुद को धोखा देता है, वह अधर्म में जीता है; और जो खुद को धोखा देने में असमर्थ हो जाता है उसके जीवन में धर्म की यात्रा शुरू हो जाती है।

लंदन में शेक्सपीयर का एक नाटक चलता था। बहुत उसकी प्रशंसा थी, सारे नगर में उसकी बात थी। नगर का जो सबसे बड़ा पुरोहित था, सबसे बड़ा पादरी था, उसके भी मन में था मैं भी जाऊं और उस नाटक को देखूं। लेकिन पुरोहित का नाटक देखने जाना शोभन न था। आखिर पुरोहितों ने ही तो नाटकों को गाली दे-दे कर निंदित किया है। तो वह स्वयं पुरोहित देखने जाए यह ठीक न था, लेकिन मन उसका बहुत-बहुत उत्सुकता से भरा था कि देखूं। उसने उस थियेटर के मैंनेजर को एक पत्र लिखा, और उस पत्र में लिखा कि मेरे मित्र, मेरे मन में बड़ी तीव्र आकांक्षा है कि मैं भी नाटक देखने आऊं। क्या तुम्हारे थियेटर में पीछे का कोई दरवाजा नहीं है, जिससे मैं तो आ सकूं और नाटक देख सकूं, लेकिन देखने वाले दूसरे लोग मुझे न देख सकें।

उस थियेटर के मैनेजर ने जो उत्तर दिया वह बड़ा अदभुत था। उसने लिखा कि जरूर आएं आपका स्वागत है। पीछे दरवाजा है। उससे अक्सर धर्म-पुरोहित, साधु-संन्यासी आते हैं। उनके लिए विशेष रूप से उसे बनाना पड़ा है। आप आएं, आपका स्वागत है। लेकिन एक बात मैं निवेदन कर दूं, ऐसा दरवाजा तो है हमारे थियेटर में कि आप आएं और देखने वाले दूसरे लोग, दूसरे दर्शक आपको न देख पाएं, लेकिन ऐसा कोई दरवाजा हमारे थियेटर में नहीं है जिससे आप आएं और परमात्मा आपको न देख सके। मुझे पता नहीं, वह पादरी गया या नहीं। वह जरूर गया होगा। क्योंकि कोई पादरी परमात्मा से जरा भी नहीं डरता है।

जीवन में हम दूसरों को धोखा देना चाहते हैं वह तो ठीक ही है, लेकिन अपने को भी धोखा देना चाहते हैं। लेकिन क्या कोई ऐसा दरवाजा हो सकता है जिससे हम जाएं और हम ही अपने को जाते हुए न देख सकें। हो सकता है परमात्मा भी चूक जाए। हो सकता है कि परमात्मा भी न देख पाए। आखिर परमात्मा किस-किस के दरवाजों पर कितनी देर तक नजर रखता होगा? और यह नजर रखते-रखते अब तक ऊब भी गया होगा, घबड़ा भी गया होगा। लेकिन क्या कोई ऐसा दरवाजा हो सकता है जिससे मैं निकलूं और मैं ही न जान पाऊं? ऐसा कोई दरवाजा नहीं हो सकता।

लेकिन हम बहुत होशियार हैं, हम आंखें बंद करके निकल जाते हैं। खुद को भी पता नहीं चलने देते। और यह धोखा गहरा होता चला जाता है, यह डिसेप्शन भारी होता चला जाता है, इसका बोझ बढ़ता चला जाता है। आत्मा बोझिल से बोझिल होती चली जाती है। फिर हम आत्मा को जानने के लिए आकांक्षा करते हों तो क्या यह हो सकेगा? जिसने निरंतर अपने को धोखा दिया है--अपने को, वह स्वयं को कैसे जान सकेगा? हो सकता है वह अंतिम धोखा और दे ले, और बिना स्वयं को जाने और समझ ले कि मैंने स्वयं को जान लिया है। और यह धोखा भी हम देते हैं।

शास्त्र से पढ़ लेते हैं आत्मा की बातें, सुन लेते हैं परंपराओं से परमात्मा के विचार। और उन्हें सीख लेते हैं, और इस भांति उनकी बातें करने लगते हैं जैसे हम जानते हों। जैसे हम जानते हों ऐसे उधार ज्ञान को हम एहसास करने लगते हैं कि हमारा अपना है। यह अंतिम धोखा है जो कोई आदमी अपने को देता है। पंडित इसी भांति अपने को धोखा दे लेता है। जो उसने नहीं जाना है, जो उसने केवल सुना है और सीखा है, जो उसने पढ़ा है और स्मरण कर लिया है, उसे भी वह ज्ञान मान लेता है।

हम सारे लोग यहां बैठे हैं। हममें से कोई ईश्वर को मानता होगा, कोई आत्मा को मानता होगा, कोई मोक्ष को मानता होगा; और हममें से कोई भी नहीं जानता इन बातों की सच्चाई। लेकिन निरंतर इन बातों को दोहराते रहने से ऐसा भ्रम पैदा हो जाता है जैसे कि हम जानते हैं। और जब हम दूसरों को ये बातें समझाने लगते हैं, और उनको ऐसा एहसास होता है, उनकी आंखों में हमें ऐसा दिखाई पड़ता है कि उनकी बातें समझ में आ रही हैं। तो उनकी आंखों में ये झलक देख कर हमको खुद यह विश्वास आ जाता है कि हम जो बातें कह रहे हैं वे जरूर सच होंगी और हमने जानी होंगी।

आज ही दोपहर में एक घटना कह रहा था।

अमरीका में एक आदमी ने सबसे पहले बैंक डाला। बाद में कोई चालीस वर्षों बाद जब वह बूढ़ा हो गया, और उसकी कोई जयंती मनाई जा रही थी तो उसके एक मित्र ने उससे पूछा कि तुमने सबसे पहले बैंक किस तरह शुरू किया? उसने कहाः मैंने एक तख्ती बनवाई, जिस पर मैंने लिख दिया "बैंक" और उसे घर के सामने टांग दिया और मैं एक पेटी और किताबें लेकर बैठ गया। पीछे, कोई घंटे भर बाद एक आदमी आया और उसने पचास रुपये जमा करवाए, फिर कोई दो घंटे बाद एक आदमी आया उसने भी डेढ़ सौ रुपये जमा करवाए। उन दोनों आदमियों को जमा करते देख कर मेरा आत्मविश्वास इतना बढ़ गया कि मैंने भी अपने पचास रुपये उसमें जमा कर दिए। दो आदमियों को जमा करते देख कर मेरा भी विश्वास इतना बढ़ गया कि मैंने भी अपने पचास रुपये उसमें जमा कर दिए कि जरूर यह बैंक चल जाएगा। ऐसे बैंक शुरू हो गया।

शास्त्रों से हम शब्द सीख लेते हैं। उन शब्दों को हम दूसरों को बताने लगते हैं और उनकी आंखों में अगर हमें झलक दिखाई पड़ती है कि हां बात उन्हें ठीक लग रही है तो हमारा खुद का विश्वास इतना बढ़ जाता है कि हमें लगता है कि जो हम कह रहे हैं वह बिल्कुल सही है। और इस भांति शब्द ज्ञान बन जाते हैं। शब्द जो कि

उधार और बासे हैं। और शास्त्र को हम स्मरण कर लेते हैं और भूल जाते हैं कि हम कुछ भी नहीं जानते। यह अंतिम धोखा है जो आदमी अपने को दे सकता है।

अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है? और अगर आप चुप रह जाएं और कहेंः मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं निपट अज्ञानी हूं। तो मैं कहूंगाः आप एक धार्मिक आदमी हैं, आप अपने को धोखा नहीं दे रहे हैं। लेकिन अगर आप कहें कि हां, ईश्वर है और इस रंग का है, और इस शक्ल का है, और इस मंदिर वाला सच्चा ईश्वर है, और दूसरे मंदिर वाला झूठा है। तो मैं आपसे कहूंगाः आपने अपने को धोखा देना शुरू कर दिया।

ईश्वर जैसी बात कहां हमें ज्ञात है? अननोन है। अज्ञात है सत्य। और हम अपनी क्षुद्र बुद्धियों को लेकर चार शब्दों को सीख लेते हैं, और कहने लगते हैं हमें ज्ञात है। या एक आदमी कहे कि नहीं है ईश्वर, वह भी इतनी ही मतांध बात कह रहा है। बिना इस बात को जाने कि जिसका उसे पता नहीं है उसे इंकार करना ठीक नहीं है। तो जो आदमी अपने प्रति सच्चाई बरतेगा, वह कहेगा कि मैं नहीं जानता हूं, मुझे कुछ पता नहीं है। और इस सरलता से, इस सच्चाई से उसके भीतर एक अन्वेषण की शुरुआत होगी, एक खोज की शुरुआत होगी।

ऐसे ही कल मैंने आपसे कहाः हमें अपने जीवन के सारे तथ्य अत्यंत निर्ममता से, सच्चाई से देख लेने जरूरी हैं। वे तथ्यों को देखने के सूत्र मैं आज आपसे कहूंगा। जीवन के तथ्यों को देखने के सूत्र क्या हैं? तीन सूत्रों पर आज मैं आपसे बात करूंगा।

पहला सूत्र हैः विचार।

लेकिन हमने अपने जीवन में विचार के लिए कोई स्थान नहीं बनाया है। हम सारे लोग विश्वास से जीए चले जाते हैं। और जो आदमी विश्वास से जीता है, वह अंधा हो जाता है। विश्वास का अर्थ ही हैः जो हम नहीं जानते उसे मान लेना। और जब हमारी ये आदत हो जाए जिसे हम न जानते हों उसे मान लेने की, तो धीरे-धीरे जीवन अंधा हो जाता है, आंखें खो देता है।

विश्वास नहीं, आत्म-निरीक्षण के लिए चाहिए विचार; तीव्र विचार चाहिए; अत्यंत पैना विचार चाहिए; जो कि हमारे सारे अंधकार को और अंधेपन को काट सके। लेकिन हमने शायद विचार करने की आदत खो दी है। हम सारे लोग बहुत विचारों से भरे हुए मालूम पड़ते हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, विचार आप कभी नहीं करते हैं। विचारों से जरूर भरे रहते हैं, लेकिन विचार आपने शायद ही किया हो। विचार करने की पहली तो शर्त यह है, किसी बात को स्वीकार न करें। अपनी चेतना को पूरी तरह से उस प्रश्न पर सजग बनाएं, खुद देखें और सोचें।

एक मुसलमान फकीर था, नसरुद्दीन। एक संध्या भीख में किसी ने उसे थोड़ा सा मांस दे दिया। कोई तीन पौंड के करीब मांस रहा होगा। तो वह घर आया, उसने अपनी पत्नी को वह मांस दिया और कहाः आज बड़े सुख का दिन है, रोटियों की जगह मांस मिल गया है! मैं जाऊं अपने मित्रों को बुला लाऊं दो-चार को, तू तब तक तैयार कर। वह लौट कर जब मित्रों को लेकर घर आया, जैसी उसकी पत्नी की आदत थी, अपनी आदत के अनुसार ही उसने काम किया था। इसके पहले कि वह घर आता उसकी पत्नी ने सारा मांस छिपा दिया। उसके आते से ही उसने कहा कि माफ करें, बड़ी मुश्किल हो गई, आप यहां से गए और हमारे घर की जो बिल्ली है वह मांस खा गई।

अगर आप उस फकीर की जगह होते तो क्या करते? चार मित्र वह साथ ले आया था। वे द्वार पर खड़े थे। और उसकी पत्नी ने कहा कि मांस बिल्ली खा गई। अगर वह विश्वासी होता, अपनी पत्नी की बात मान लेता और चुप रह जाता; अविश्वासी होता तो मन ही मन में संदेह करता, झगड़ा खड़ा करता। लेकिन न तो वह विश्वासी था और न अविश्वासी। उसने क्या किया, वह भाग कर पड़ोस की दुकान पर गया और तराजू ले आया।

और तराजू पर बिल्ली को रख कर तौल लिया। बिल्ली तीन पौंड निकली तो उस फकीर ने कहा कि अगर यह मांस है तो बिल्ली कहां है? और अगर यह बिल्ली है तो मांस कहां है?

इस आदमी को हम कहेंगे, यह विचार का उपयोग कर रहा है। चीजों को तौल रहा है, परख रहा है, माप रहा है, कसौटी पर कस रहा है। उसने कहाः अगर यह है बिल्ली, तो फिर मांस कहां है? तीन पौंड तो मांस ही था। और अगर तू कहती है, उसने अपनी पत्नी से कहा कि यह मांस ही है तो मैं पूछता हूं, बिल्ली कहां है? उसकी पत्नी ने सोचा भी न होगा कि बिल्ली तराजू पर तौली जाएगी।

हमने जिंदगी में तथ्यों को तराजू पर तौलना बहुत दिनों से बंद कर दिया है। हम आंख बंद करके या तो स्वीकार किए चले जाते हैं या अस्वीकार किए चले जाते हैं--लेकिन आंख बंद करके। आंख खोल कर जीवन के तथ्यों को, सच्चाइयों को हम तौलते नहीं। और तब धीरे-धीरे सारा रास्ता भटक जाता है और अंधेरा हो जाता है। अत्यंत सजग विचार चाहिए। हर चीज को कसौटी चाहिए। जिंदगी खिलवाड़ नहीं है, जिंदगी एक बड़ी परीक्षा है, जिंदगी एक बड़ी कसौटी है। जिंदगी का प्रतिपल एक अवसर है कि हम अपने भीतर सोई हुई शक्तियों को जगाएं या सोने दें।

जो आदमी विश्वास कर लेता है उसके भीतर विचार की, तर्क की प्रतिभा जन्मती नहीं। अगर कोई आदमी अपनी आंखों का उपयोग न करे, कुछ वर्षों तक आंखें बंद रखे तो फिर उसकी आंखें काम करना बंद कर देंगी। अगर कोई अपने पैरों को बांध कर बैठ जाए और कुछ वर्षों तक न चले तो उसके पैर चलना बंद कर देंगे। क्योंकि जिस शक्ति का हम उपयोग करना बंद कर देते हैं वह शक्ति क्षीण हो जाती है। जिस शक्ति का हम जितना अधिक उपयोग करते हैं वह उतनी विकसित होती है।

लेकिन हजारों साल से मनुष्य जाति का जिन लोगों ने शोषण किया है, उन्होंने चाहा नहीं कि मनुष्य सोचे, विचार करे। क्योंकि विचार बड़ी खतरनाक बात है, विचार बहुत विद्रोही है, बहुत रिबेलियस है। जो आदमी विचार करेगा उसका शोषण नहीं किया जा सकता, उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। उसे बरगलाया नहीं जा सकता, उसे गलत रास्तों पर नहीं ले जाया जा सकता। और आज तक मनुष्य-जाति को कुछ थोड़े से लोग... जैसे एक बड़ा षडयंत्र काम कर रहा है--अपने हित और स्वार्थ में गलत रास्तों पर ले जाते रहे हैं, इसके लिए जरूरी था कि वह मनुष्यों के भीतर विचार को पैदा न होने दें।

इसलिए उन्होंने सिखाया, विश्वास करो--धर्म पुरोहितों ने, राजनीतिज्ञों ने, धनपतियों ने सभी ने सिखाया है विश्वास करो! विश्वास फलदायी है, विश्वास धर्म का आधार है। जो विश्वास करता है वह परमात्मा को पा लेता है। इस तहर की बातें सिखाईं जो निहायत झूठी और गलत हैं।

विश्वास से कभी कोई सत्य तक, ईश्वर तक न पहुंचा है और न पहुंच सकता है। क्योंकि जो खुली आंख चाहिए थी सत्य के निरीक्षण को, देखने को, दर्शन को वह विश्वास बंद कर देता है। इसलिए जो व्यक्ति भी अपने जीवन को उघाड़ने को उत्सुक हुआ है, और अपने भीतर प्रवेश करके जीवन की शक्ति को जानने की आकांक्षा से भर गया है, उसे जानना चाहिए, उसे विचार करना होगा। विचार बड़ी तपश्चर्या है।

क्योंकि अनेक बार विचार बहुत से भ्रम छीन लेगा, बहुत से इलूजंस, और बहुत से इलूजंस, बहुत से भ्रम बड़े सुखदायी हैं। उनको छिन जाना बहुत दिल को चोट पहुंचाएगा, बहुत घबड़ाहट होगी। सारे भ्रम छिन जाएं तो आदमी बहुत बेचैनी अनुभव करेगा। लेकिन सत्य तक पहुंचने के पहले भ्रमों का छिन जाना जरूरी है। विचार की तेज तलवार भ्रमों के जाल को तोड़ देती है, इसलिए सोचना जरूरी है। दूसरे को स्वीकार या अस्वीकार

करना नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर समग्र चेतना से लग कर सोचना-विचारना जरूरी है। हर तथ्य को उलटना-पलटना जरूरी है। उसे तराजू पर तर्क के कसना जरूरी है।

पहला सूत्र हैः विचार।

और जिस व्यक्ति के भीतर विचार सजग होता है उसके जीवन में एक अलग तेजस्विता पैदा हो जाती है। जिसके भीतर विचार फीका पड़ जाता है उसके जीवन में एक डलनेस, एक शिथिलता, एक उदासी, एक सुस्ती छा जाती है। मनुष्य के भीतर जो सबसे तेज तेजस्विता है, जो सबसे ज्वलंत अग्नि है वह विचार की है। जिसके प्राण जितने विचारपूर्ण होते हैं उसके जीवन में उतनी रोशनी और तेज आ जाता है, उतना प्रकाश आ जाता है।

एक बहुत बड़ा विचारक था। वह एक दिन सुबह-सुबह अपने गांव के तेली के घर तेल खरीदने गया था। उसने तेल खरीदा। तब तक तेल तेली तौल रहा था, वह देखता रहा कि उसके पीछे ही तेली का कोल्हू चल रहा था। बैल की आंखों पर पट्टियां बंधी थीं और वह बैल कोल्हू को चला रहा था। कोई चलाने वाला नहीं था। उसने उस तेली को पूछाः कोई चला नहीं रहा है, फिर भी ये बैल चल रहा है, बात क्या है? उस तेली ने बड़े मतलब की बात कही। उसने कहाः देखते नहीं हैं, उसकी आंखें हमने बंद कर रखी हैं। जब आंख बंद होती है तो बैल को पता ही नहीं चलता कि कोई चला रहा है कि नहीं चला रहा है। आंख खुली हो तो बैल पता लगा लेगा कि कोई नहीं चला रहा है, तो वह खड़ा हो जाएगा।

उस विचारक ने पूछाः लेकिन अगर वह खड़ा हो जाए, तो तुम्हें कैसे पता चलेगा? तुम तो पीठ किए बैठे हुए हो। उसने कहाः उसके गले में हमने घंटी बांध रखी है। चलता है घंटी बजती रहती है, जैसे ही घंटी रुकती, हम फिर उसे चला देते हैं। उसे कभी यह खयाल ही नहीं आ पाता कि बीच में चलाने वाला गैर-मौजूद था। उस विचारक ने कहाः लेकिन यह भी तो हो सकता है कि बैल खड़ा हो जाए और सिर हिलाता रहे, घंटी बजती रहे। उस तेली ने कहाः हाथ जोड़ते हैं आपके, कृपा करके यहां से चले जाइए, कहीं बैल ने आपकी बात सुन ली, बड़ी मुश्किल हो जाएगी। आप जाइए, और अगली बार कहीं और से तेल खरीदा करिए। बैल बिचारा सीधा काम कर रहा है, इस तरह की बात सुन ले सब गड़बड़ हो जाए। बैल का मालिक नहीं चाहता है कि विचार बैल तक पहुंच जाए।

दुनिया में कोई मालिक नहीं चाहता है कि विचार मनुष्य तक पहुंच जाए। और मनुष्य को जोता हुआ है, बहुत से, बहुत से कोल्हुओं में उससे काम करवाया जा रहा है। और उसके गले में घंटियां बांध दी गई हैं--जो बज रही हैं, और आदमी है कि आंख बंद किए चला जा रहा है। आंख किस बात से बंद हैं?

आंख विश्वास से बंद हैं। बिलीफ, आदमी की आंख पर बिलीफ की पट्टियां हैं, विश्वास की पट्टियां हैं। तभी तो एक रंग की पट्टी एक आदमी को मुसलमान बना देती है, दूसरे को हिंदू, तीसरे को जैन, चौथे को ईसाई बना देती है। अन्यथा आदमी-आदमी में कोई और फर्क है सिवाय विश्वासों के? एक आदमी और दूसरे आदमी में कोई भेद है, कोई दीवाल है, कोई खाई है उन दोनों के बीच? उनके प्रेम को रोकने वाली कोई दीवाल है? सिर्फ विश्वास के अतिरिक्त और कोई दीवाल नहीं है। मैं मुसलमान हो जाता हूं, आप हिंदू हो जाते हैं।

क्योंकि मुझे बचपन से दूसरे विश्वास का जहर पिलाया गया और आपको दूसरे विश्वास का जहर पिलाया गया। आपकी आंख पर दूसरे ढंग की पट्टियां बांधी गईं, कोई दूसरे कोल्हू में आपको जोता गया, मुझे किसी दूसरे कोल्हू में जोता गया। और चाहे हम किसी भी कोल्हू में जुते हों, एक बात तय है कि हमारी आंखें बंद कर दी गई हैं। हमारी आंख के खुलने के सारे द्वार बंद कर दिए गए हैं, हमारे भीतर खयाल भी पैदा न हो।

और अगर कभी कोई खयाल दिलाने आ जाए तो कोल्हू का मालिक कहता हैः आपके हाथ जोड़ते हैं, आप यहां से जाइए। आपकी बातें अगर बैल ने सुन ली तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी! इसलिए दुनिया में जब भी विचार को जन्म देने वाले लोग पैदा हुए तो हमने उनकी हत्या कर दी। हमने उनको सूली पर लटका दिया, या जहर पिला दिया।

सुकरात को यूनान ने जहर पिलाया। एक आदमी था जिसने विचार के लिए कोशिश की थी। जो एथेंस की सड़कों पर गया और चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को जगाने लगा कि तुम सोए हुए हो, तुम अंधे हो। तो उस इलाके के जिनके स्वार्थ निहित होंगे, उन्होंने फिर सुकरात को बरदाश्त नहीं किया। उन्होंने कहाः यह आदमी, समाप्त कर देना जरूरी है इसे, क्योंकि यह ऐसी बातें कह रहा है कि अगर लोगों ने सुन लीं तो फिर उनका किसी तरह शोषण न किया जा सकेगा। उनका एक्सप्लाइटेशन नहीं हो सकेगा। तो सुकरात को उन्होंने कहा कि तुम लोगों को बिगाड़ रहे हो। जरूर अगर कोई विचारक किसी बैल को समझाए कि तू विचार कर और देख तो उसका मालिक कहेगा कि बैल को बिगाड़ते हो!

सुकरात को जहर दे दिया। इधर तीन-चार हजार वर्षों में जब भी विचार की कोई किरण मनुष्य के भीतर पैदा होने को हुई, और ऐसा डर पैदा हुआ कि उस... हवाएं कहीं उसे दूर न ले जाएं और सबके हृदय में चिनगारी न जला दें, तभी जल्दी से जो स्वार्थांध थे उन्होंने उसकी हत्या कर दी। उस चिनगारी को वहीं बुझा दिया। आज भी हम करीब-करीब वैसे ही अंधेरे में खड़े हैं, जैसे सुकरात के वक्त लोग थे। कोई फर्क पैदा नहीं हुआ। एक साजिश है, एक कांसपेरेसी है, एक षडयंत्र है।

कुछ लोगों के हित में है यह बात कि समस्त मनुष्य-जाति अंधी बनी रहे। फिर इन अंधे लोगों से कुछ भी करवाया जा सकता है। इनसे कहा जा सकता हैः इसलाम खतरे में है तो आग लगाओ हिंदुओं के घरों में, तो ये अंधे आदमी आग लगाएंगे। ये न पूछेंगे कि लोगों के मकान में आग लगाने से धर्म का क्या संबंध हो सकता है? अब इनसे कहा जा सकता हैः हिंदू धर्म खतरे में है तो जलाओ मस्जिदों को, तो ये मस्जिदों को जलाएंगे, निहत्थे बच्चों की हत्या कर देंगे। और ये न पूछेंगे कि हिंदू धर्म की रक्षा का किसी के बच्चे की हत्या करने से कौन सा संबंध है?

ये पूछेंगे ही नहीं। क्योंकि पूछता वह है जो विचार करता है, जो विश्वास करता है वह पूछता नहीं है। वह क्वेश्चंस खड़े नहीं करता। उसे तो जो कहा जाता है--आज्ञा, आज्ञा होती है उसे। वह उसे स्वीकार कर लेता है। इसीलिए तो दुनिया में आज तक न मालूम किस-किस तरह की बेवकूफियां आदमी को समझाई जाती रही हैं। आदमी उनके लिए लड़ाया जाता रहा, उसकी हत्या करवाई जाती रही, वह हत्या करता रहा।

क्योंकि एक बुनियादी तरकीब काम में ले आई गईः विचार को जन्मने मत दो। क्योंकि विचार पूछेगा, विचार झिझकेगा, विचार हेजिटेट करेगा, विचार संदेह करेगा, विचार तर्क करेगा, पूछेगा और जब खुद उसे अहसास होगा कि ठीक है--तब, तब एक कदम आगे उठाएगा। इसलिए जो लोग उपद्रव जारी रखना चाहते हैं दुनिया में, शोषण जारी रखना चाहते हैं, युद्ध जारी रखना चाहते हैं, वे नहीं चाहते कि विचार पैदा हो। वे चाहते हैं विश्वास रहे।

हिटलर भी वही चाहता है, स्टैलिन भी वही चाहते हैं, दुनिया के और नेता भी वही चाहते हैं, धर्म नेता भी वही चाहते हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि चाहे वे धार्मिक नेता हों, चाहे राजनैतिक, वे सब एक बात पर सहमत थे कि बृहत्तर मनुष्यता की आंखें खुलनी नहीं चाहिए। और तब वे सब एक ही षड्यंत्र में सहभागी हैं।

मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूंः आंख खोलने के लिए, पूछने के लिए, प्रश्न खड़े करने के लिए। जिंदगी अंधे की तरह स्वीकार कर लेने की चीज नहीं है, खुली आंखों से खोजने की बात है। लेकिन हमने सब उत्तर बिना पूछे स्वीकार कर लिए हैं, इसीलिए तो हमारा सारा ज्ञान मुर्दा है। उसमें जीवन नहीं है, उसमें लीविंग क्वालिटी नहीं है। जो ज्ञान हम पूछ कर, खोज कर उपलब्ध करते हैं उसमें जीवंतता होती है, उसमें जीवन होता है। जो ज्ञान हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं वह मृत होता है।

जापान के एक गांव में दो मंदिर थे। उन दोनों मंदिर में पुश्तैनी झगड़ा था जैसा कि मंदिरों में होता है। वे दोनों मंदिर हमेशा से एक-दूसरे के दुश्मन थे। वह दुश्मनी बड़ी पुरानी थी। अनेक लोग मर चुके थे पीढ़ियों से, लेकिन दुश्मनी कायम थी। क्योंकि मां-बाप अपने बच्चों को इतना प्रेम करते हैं कि वे अपनी दुश्मनी भी बपौती में दे जाते हैं कि तुम इसको सम्हाले रखना।

तो उन मंदिरों के पुजारी बदलते गए थे, हजार साल पुराने वे मंदिर थे। लेकिन हर पुजारी नये पुजारी को बपौती दे गया था कि दूसरा मंदिर दुश्मन है। दुश्मनी इतनी ज्यादा थी कि उनमें आपस में कोई बोलचाल न थी। किस धर्म में आपस में बोलचाल है, मस्जिद और मंदिर में बोलचाल है? चर्च में और मंदिर में बोलचाल है? कभी कोई बोलचाल नहीं है। उनके बीच कभी कोई लेन-देन नहीं है।

उन दोनों मंदिरों में भी नहीं था। लेकिन उन दोनों मंदिरों के पुजारियों के पास दो छोटे-छोटे बच्चे थे जो छोटी-मोटी सेवा, टहल के लिए थे, छोटा-मोटा काम कर देने के लिए थे। अब बच्चे-बच्चे हैं, वे दोनों कभी आपस में रास्ते पर मिल जाते थे तो हंस बोल भी लेते थे। बच्चों को बूढ़े बिगाड़ते तो हैं लेकिन वक्त लग जाता है बिगाड़ने में। बच्चे आखिर बच्चे हैं, एकदम से नहीं बिगाड़े जा सकते। तो हालांकि उनके पुजारी समझाते थे कि देखो दूसरे मंदिर के बच्चे से बात मत करना। लेकिन फिर भी बच्चे, बच्चे हैं बिगाड़ने में वक्त लग जाता है। वे कभी-कभी बोल लेते थे।

एक दिन उत्तर के मंदिर के पुजारी ने देखा कि उसका बच्चा दक्षिण के मंदिर के पुजारी के बच्चे से बातें कर रहा है। उसने... जब वह वापस लौटा तो उसे डांटा और कहा कि तुम क्या बातें कर रहे थे? और मैंने कह दिया कि बात मत करो। उस लड़के ने कहाः मैं खुद भी आपसे पूछने को था, आज कुछ ऐसी बात हो गई है कि मैं निरुत्तर हो गया। मैंने उस लड़के से पूछाः उस मंदिर के लड़के से कि तुम कहां जा रहे हो? वह लड़का बोला, जहां पैर ले जाएं। और तब मेरी समझ में कुछ भी न आया कि अब मैं उससे और आगे क्या कहूं? उसका गुरु बहुत नाराज हुआ। उसने कहाः यह बहुत बुरी बात है। उस मंदिर के बच्चे से हार जाना हमारे मंदिर की तौहीन है। तो तुम कल फिर यही बात पूछना, कहां जा रहे हो? और जब वह कहे, जहां मेरे पैर ले जाएं तो तुम उससे कहना कि और समझ लो, अगर तुम्हारें पैर न होते तो तुम कहां जाते? जाते कि नहीं? तब फिर वह भी रह जाएगा, उसको भी फिर सूझे नहीं मिलेगा उत्तर कि क्या दे?

दूसरे दिन नियत जगह पर वह लड़का जाकर खड़ा हो गया। उस मंदिर का लड़का निकला उसने पूछा, कहां जा रहे हो मित्र? लेकिन उस लड़के ने नहीं कहा कि जहां पैर ले जाएं, उस लड़के ने कहाः जहां हवाएं ले जाएं। बहुत मुश्किल हो गई, बंधा हुआ उत्तर तैयार था लेकिन अब उसको देने का कोई मतलब न था। तैयार करके वह आया था कि कहूंगा कि अगर तुम्हारे पैर न हों, फिर कहीं जाओगे कि नहीं? लेकिन अब इसके कहने का कोई सार न था। बड़ा क्रोध आया उस पर कि यह लड़का तो बड़ा बेईमान है, कल कुछ कहा, आज कुछ कहने लगा। लौट कर आया अपने गुरु को कहा कि मैं आज भी हार गया हूं। वह लड़का तो बहुत बेईमान मालूम होता है। उसके गुरु ने कहाः बेईमान लड़का, हजार साल से उस मंदिर में बेईमानों के सिवा कभी कोई रहा है? जरा

सी बात में बदल जाते हैं वे लोग, लेकिन तुम डरो मत। कल तुम फिर पूछना, और जब वह कहेः जहां हवाएं ले जाएं तो कहना और अगर हवाएं बंद हों तो कहीं जाओगे कि नहीं।

वह लड़का फिर नियत जगह पर जाकर खड़ा हो गया। उसके पास अपना कोई विचार तो था नहीं, अपनी कोई बुद्धि तो थी नहीं, अपना कोई चिंतन तो था नहीं, बंधे हुए उत्तर थे। वह लेकर उत्तर वहां जाकर खड़ा हो गया। जैसे कि हम सब लोग बंधे हुए उत्तर लिए ह्ुए खड़े हैं, ऐसे ही वह भी खड़ा हो गया। फिर उसने लड़के से पूछा, कहां जा रहे हो मित्र? वह लड़का सच में ही बेईमान था, जैसे कि जिंदगी बेईमान है, रोज बदल जाती है। उस लड़के ने कहाः सब्जी खरीदने जा रहा हूं। और वह हवाओं का बंधा हुआ प्रश्न और उत्तर वहीं के वहीं रह गए।

जिंदगी भी बंधे हुए उत्तर नहीं मानती। रोज जिंदगी प्रश्न बदल देती है और हमारे उत्तर बंधे-बंधाए, सीखे हुए तैयार रह जाते हैं। जिंदगी बंधे हुए उत्तर नहीं चाहती। जिंदगी चाहती है विचारपूर्ण चेतना। जो भी प्रश्न खड़ा हो उस चेतना में प्रतिफलित होगा, चैलेंज होगा, चुनौती होगी और उत्तर आएगा। विचार में उत्तर आता है, विश्वास में उत्तर सीखा हुआ, बंधा हुआ होता है।

वह हम गीता से सीखते हैं, बाइबिल से सीखते हैं, कुरान से सीखते हैं, कृष्ण से, महावीर से, क्राइस्ट से सीखते हैं, वह उत्तर हम किसी से सीख कर आते हैं। और जिंदगी के चौराहे पर खड़े हो जाते हैं। और जिंदगी रोज बदल जाती है, हमारा उत्तर पीछे पड़ जाता है। हम परेशान हो जाते हैं।

जो आदमी सीखे हुए उत्तर बांध लेता है अपने मन में, उसका जिंदगी से कभी मेल नहीं हो पाता। जिंदगी रोज आगे बढ़ जाती है। जिंदगी की गंगा ठहरती नहीं; वह आपके बंधे हुए उत्तरों के लिए नहीं है; वह रोज नई हो जाती है और नये प्रश्न खड़े कर देती है। आप अपनी किताब खोल कर जब तक उत्तर खोजते हैं, तब तक आप आंखें उठा कर देखते हैं जिंदगी और आगे बढ़ गई, उसने और नये प्रश्न खड़े कर दिए हैं। आप हमेशा पीछे रह जाते हैं, विश्वास करने वाला हमेशा पीछे रह जाता है, जिंदगी से उसका संपर्क नहीं हो पाता।

क्योंकि विश्वास दूसरे से ग्रहण करने पड़ते हैं और दूसरे से ग्रहण करने में बासे हो जाते हैं; बंधे-बंधाए हो जाते हैं; डेड हो जाते हैं, मुर्दा हो जाते हैं। उनका बोझ तो जीवन पर हो जाता है, लेकिन जीवन को वे निर्भार नहीं कर पाते हैं।

इसलिए पहला सूत्र हैः स्वयं के विचार की शक्ति को जगाना।

कैसे जगेगी? विचार करेंगे तो जगेगी। सोचें, जीवन के हर पहलू को ऐसे ही स्वीकार न कर लें। सोचें, तराजू उठा लें तर्क की और तौलें। और विचार की कसौटी पर जो खरा न उतरता हो, चाहे वह कितना ही प्रीतिकर लगे, चाहे वह कितना ही सुखद मालूम हो, चाहे कितनी ही सांत्वना उससे मिलती हो--हिम्मत करें, उसे स्वीकार न करें। और तब तक प्रतीक्षा करें, जब तक विचार की कसौटी पर वह सही उतर आए। बहुत तपश्चर्या की बात है, कठिन बात है। हमारा मन तो ऐसे चुपचाप मानने को राजी हो जाता है। कौन मेहनत करे?

विचार में तो श्रम है, विश्वास में कोई श्रम नहीं है। मैंने कह दिया और आपने मान लिया। आपको कुछ भी न करना पड़ा। आप सहयोगी न हुए, आप सक्रिय न हुए, आप दूर खड़े रहे। मैंने कहा और आपने मान लिया, सुन लिया और अपने रास्ते पर चले गए। इस तरह निष्क्रिय रूप से जो स्वीकार करता है, उसकी आंखें बंद रह जाती हैं। समग्र जीवन को एक सक्रिय विचार के रूप में लेना जरूरी है--यह पहला सूत्र है। दूसरा सूत्रः वही व्यक्ति सक्रिय रूप से विचार कर सकता है जो निष्पक्ष हो।

दूसरा सूत्र हैः निष्पक्षता।

जो आदमी किसी पक्ष में बंध जाता है वह सोच-विचार नहीं कर सकता है। उसकी जाने-अनजाने इच्छा यही होती है कि मेरा पक्ष सही सिद्ध हो जाए। वह फिर निष्पक्ष नहीं हो पाता, अनप्रिज्युडिस्ड नहीं हो पाता। उसके मन का लगाव होता है कि यही सही हो। अगर आप हिंदू हैं तो आप सत्य की खोज नहीं कर रहे हैं। आप फिर इस बात की खोज कर रहे हैं कि हिंदू होना कैसे सच्चा सिद्ध हो? कैसे यह मान लिया जाए कि हिंदू ही सही है, इसकी खोज चल रही है। यह खोज फिर निष्पक्ष सत्य की खोज नहीं है, आपने अपना पक्ष तय कर लिया है। आप पहले से ही निर्णय कर चुके हैं, और तब फिर बहुत आसान है जो आदमी किसी पक्ष को पहले से स्वीकार कर ले। जिंदगी बहुत बड़ी चीज है, उसमें से वह अपने पक्ष की बातें चुन ले सकता है। और भ्रांति में पड़ सकता है।

एक आदमी ने एक किताब लिखी है। अमरीका में तेरह का अंक, तेरह की तारीख अशुभ समझी जाती है। तो एक आदमी ने एक किताब लिखी है और उसने सिद्ध कर दिया है कि हां, तेरह का अंक, तेरह की तारीख अशुभ है। कैसे उसने सिद्ध कर दिया? तेरह तारीख को अमरीका में जितनी हत्याएं होती हैं, उसने उन सबका हिसाब लगवा लिया। तेरह तारीख को कितने लोग किन-किन बीमारियों से मरते हैं, उसके आंकड़े इकट्ठे कर लिए। तेरह तारीख को सड़कों पर कितने एक्सीडेंट होते हैं, उसके आंकड़े इकट्ठे कर लिए। तेरह तारीख को और क्या-क्या उपद्रव होते हैं, कितनी स्त्रियां भगाई जाती हैं, कितने मकानों में आग लगती है, और क्या-क्या होता है वह सब इकट्ठा कर लिया। और सबको इकट्ठा करके उसने रख दिया किताब में। और उसने कहाः यह सब तेरह तारीख को होता है। इससे सिद्ध होता है कि तेरह तारीख बुरी तारीख है। अगर आप भी पढ़ेंगे तो बहुत प्रभावित हो जाएंगे कि बात तो ठीक ही मालूम पड़ती है।

लेकिन अगर कोई चाहे तो बारह तारीख को भी इसी भांति सिद्ध कर देगा। कोई चाहे तो ग्यारह तारीख को भी इसी भांति सिद्ध कर देगा। एक्सीडेंट ग्यारह तारीख को भी होते हैं, मरना ग्यारह तारीख को भी होता है, बीमारियां ग्यारह तारीख को भी होती है, आग भी लगती है, सब कुछ होता है। लेकिन तेरह तारीख का पक्ष लेकर वह चला तो उसने चुनाव कर लिया, खोज लिया। आप बारह तारीख को लेकर चलें तो बारह तारीख के लिए भी खोज लेंगे। कोई दस तारीख के लिए चले तो दस तारीख के लिए भी खोज लेगा।

यह खोज नहीं है। यह पहले से पक्ष बना कर उस पक्ष को सिद्ध करना है। यह वैज्ञानिक बुद्धि नहीं है, यह साइंटिफिक एटिट्यूड नहीं है। जिंदगी के प्रति इस भांति का जो रुख लेता है वह जो चाहे सिद्ध कर लेता है, लेकिन उस सिद्ध होने से कोई सत्य की खोज नहीं होती। निष्पक्ष होना चाहिए। कोरे कागज की तरह खाली जीवन की खोज में जाना चाहिए। पहले से मैं कुछ निर्धारित करके न जाऊं, शुभ और अशुभ, सत्य और असत्य, मैं पहले से तय करके न जाऊं, मेरा मन खुला हो, ओपन हो, जीवन जो कहे उसे मैं सुनने को राजी हूं। और तब, तब जरूर तथ्य खोजे जा सकते हैं। सत्य की खोज की जा सकती है।

दूसरा सूत्र हैः निष्पक्षता।

क्या हमारे मन निष्पक्ष हैं? क्या किसी भी मसले पर हम निष्पक्ष होकर सोच सके हैं कभी? अगर न सोचा हो आपने तो आप समझ लेना, आपने फिर सोचा ही नहीं है कभी। क्योंकि निष्पक्ष हुए बिना कोई सोच नहीं सकता। लेकिन हम सब तो पक्षधर हैं, हम तो किसी न किसी पक्ष में हैं। और जब हम किसी पक्ष में होते हैं तो फिर, तो फिर हमारी आकांक्षा बहुत दूसरी होती है।

एक फकीर ने एक बार कहा था--दो तरह के लोग जमीन पर हैं। एक तो वे जो चाहते हैं सत्य मेरे पड़ोस में आकर खड़ा हो, दूसरे वे जो चाहते हैं सत्य कहीं भी हो, मैं उसके पास जाकर खड़ा हो जाऊं। एक तो वे जो चाहते हैं सत्य मेरे बगल में आकर खड़ा हो, दूसरे वे जो चाहते हैं मैं सत्य के बगल में जाकर खड़ा हो जाऊं। यह दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है। जो आदमी चाहता है सत्य मेरे बगल में आकर खड़ा हो, यह पक्षपात से घिरा हुआ आदमी है। चाहे सत्य को अपने पड़ोस में खड़ा करने में सत्य के प्राण निकल जाएं, लेकिन यह उसको अपने बगल में खड़ा करके रहेगा। यह, सत्य से इसे कोई प्रेम नहीं, प्रेम है खुद के अहंकार से। और उसके अहंकार की पूर्ति के लिए सत्य को भी ले आता है।

लेकिन दूसरा व्यक्ति जो कहीं भी सत्य हो उसके पक्ष में जाकर खड़े होने को राजी है। ऐसा व्यक्ति जरूर ही जीवन में सरल हो जाता है। अहंकार से शून्य हो जाता है और सत्य को उपलब्ध कर पाता है। निष्पक्ष होना जरूरी है। सोचना जरूरी है भीतर कि मैं पक्षों से बंधा हुआ तो नहीं हूं। अगर जमीन पर थोड़े से लोग भी निष्पक्ष हो जाएं तो जमीन पर युद्धों का कोई कारण न रह जाए।

क्योंकि बड़े आश्चर्य की बात है, आज तक जमीन पर किसी भी कौम ने यह नहीं कहा कि हमने आक्रमण किया है! सभी कहते हैं, हमने केवल अपनी रक्षा की है। फिर आक्रमण कौन करता है? दुनिया में जितनी हुकूमतें हैं उन सबके जो उपद्रव और युद्ध के विभाग हैं, वे सब डिफेंस कहलाते हैं। वे सब कहलाते हैं रक्षा विभाग। जब दुनिया में सभी लोग डिफेंस करते हैं, तो अटैक कौन करता है? जब दुनिया में सभी लोग सुरक्षा करते हैं अपनी सिर्फ, तो हमला कौन करता है? लेकिन कोई निष्पक्ष होकर सोचने को राजी नहीं। इसलिए खुद जो हम करते हैं वह सुरक्षा है, दूसरा जो करता है वह आक्रमण है।

एक ईसाई पिता अपने बच्चे को कह रहा थाः दस हिंदू ईसाई हो गए, परमात्मा को धन्यवाद! उन दस लोगों को सुबुद्धि आ गई। उसके बच्चे ने कहाः लेकिन पिताजी एक बार एक ईसाई हिंदू हो गया था तब तो आपने यह बात नहीं कही थी। तब तो आपने कुछ और ही कहा था। उसका पिता लाल आंखें करके बोला, चुप उस गद्दार का नाम भी मत लेना जो ईसाई से हिंदू हो गया।

वह है गद्दार जो ईसाई से हिंदू हो जाए और जो हिंदू से ईसाई हो जाए उसको आ गई सुबुद्धि, वह है परमात्मा का प्यारा! हम सब पक्षधर हैं, इसलिए हम सोच नहीं पाते, देख नहीं पाते, समझ नहीं पाते कि जिंदगी कैसे रास्ते चल रही है। और तब हम अपने-अपने कुएं में बंद होते हैं, उसके बाहर हमारी आंख नहीं जाती।

सुनी ही होगी वह बात, सागर का एक मेढक एक छोटे से कुएं में आ गया था। उस कुएं के मेढक ने उससे कहाः मित्र तुम कहां से आते हो? उसने कहाः मैं समुद्र से आता हूं। उस मेढक ने कहाः कितना बड़ा है तुम्हारा समुद्र, इतना बड़ा--थोड़ी सी छलांग लगाई उसने कुएं के भीतर, एक फीट छलांग लगाई, कहाः इतना बड़ा है? सागर से आने वाला मेढक हंसा और उसने कहाः नहीं मित्र, इससे बहुत ज्यादा बड़ा है। उसने और जरा डेढ़ फीट लंबी छलांग लगाई, इतना बड़ा? उसने कहाः नहीं मित्र, सागर और बहुत बड़ा है। वह छलांग लगाता गया। आखिर जितना बड़ा कुआं था, कोई आठ फीट, आठ फीट की छलांग लगाई, उसने कहाः बस इतना बड़ा? उस सागर से आने वाले मेढक ने कहाः नहीं मित्र, तुम्हारे पास नापने का कोई उपाय नहीं है। कुएं वाला मेढक हंसने लगा और उसने कहाः निहायत पागलपन की बातें करते हो, इससे बड़ी कोई जगह भी है दुनिया में! इस कुएं से बड़ी कोई जगह भी है? जो एक कुएं में रहा है उसे अगर ऐसा खयाल पैदा हो जाए कि इससे बड़ी कोई जगह नहीं, तो हंसने की क्या बात है? जो कुएं में ही रहा है उसे पता भी कैसे चलेगा, इससे बड़ी कोई जगह है।

हम सारे लोग भी तो अपने-अपने कुएं बना लिए हैं और उनमें रह रहे हैं। और जब भी कोई सागर की खबर लाता है तो हम कहते हैंः गीता में जो लिखा है वही आप कह रहे हैं न, बाइबिल में जो लिखा है वही न, कुरान में जो लिखा है वही न? और वह अगर कहे--नहीं, जो मैं खबर लाया हूं वह कहीं भी लिखी हुई नहीं। तो हम कहेंगे, रहने दीजिए ऐसी कोई बात ही नहीं हो सकती। हमारे कुएं से बड़ा भी कोई और स्थान हो सकता है? शब्दों में जो कहा गया है उससे भी बड़ा कोई सत्य हो सकता है? परंपराओं ने जो कहा है उससे भी बड़ी कोई बात हो सकती है?

हम अपने-अपने कुएं में बंद हैं। जो अपने कुओं में बंद है उसे मैं कह रहा हूंः पक्षपाती, पक्षधर, प्रिज्युडिस्ड। सोच-विचार के लिए चाहिए कुएं के बाहर आ जाना। उस मेढक ने भूल की जो सागर से आया था। मैं उसकी बड़ी तलाश करता हूं कि वह मुझे कहीं मिल जाए तो उससे मैं दो बातें कर लूं। उसने बड़ी भूल की, कुएं वाले मेढक ने कोई भूल नहीं की। भूल की तो सागर से आने वाले मेढक ने की। जब कुएं के मेढक ने छलांग लगाई थी और कहा था इतना बड़ा? तभी सागर वाले मेढक ने भूल कर दी, उसने यह कहाः नहीं, इतना बड़ा नहीं और बड़ा। इससे कुएं के मेढक को यह भ्रम पैदा हुआ कि और दूसरी छलांग लगाऊं जरा और लंबी, और तीसरी लगाऊं, और चौथी लगाऊं।

अगर मैं उसकी जगह होता तो उस कुएं के मेढक को कहताः मित्र छलांग मत लगाओ, और लगानी ही है तो पानी में मत लगाओ, कुएं के बाहर लगाओ। बाहर आ जाओ। और सागर को अगर जानना ही है तो कुएं में बैठ कर जानने का कोई उपाय नहीं है। चलो जिस रास्ते से मैं सागर से यहां तक आया हूं, वह रास्ता मुझे पता है। मैं तुम्हें सागर तक ले चलता हूं। अगर वह कुएं के मेढक को सागर तक ले गया होता तो जो बात समझानी कठिन थी, संभव नहीं हुई थी, वह उस कुएं के मेढक को खुद भी दिखाई पड़ जाती।

तो मैं आपसे कहूंगा कुएं के भीतर नापना-जोखना बंद करें। थोड़ा कुएं के बाहर आएं। हिंदू के कुएं के, मुसलमान के कुएं के, जैन के कुएं के--थोड़ा बाहर आएं। परमात्मा का सागर बहुत बड़ा है, धर्म पुरोहितों के कुएं बहुत छोटे हैं। किताबों के कुएं बहुत छोटे हैं, शब्दों के कुएं बहुत छोटे हैं; सत्य का सागर बहुत बड़ा है। और जो वहीं शब्दों में उनको नापने की कोशिश करेगा, अपने-अपने कुएं की इकाई में चाहे उसका कुआं कितना ही बड़ा हो वह कभी भी सत्य को न नाप पाएगा। निष्पक्ष मन, कुएं के बाहर आ गया मन है।

इसलिए दूसरा सूत्र हैः पक्ष को विसर्जन कर दें, पक्ष को जाने दें। तीसरा सूत्र, जिसके बिना दूसरा सूत्र भी संभव नहीं होगा। जैसे दूसरे के बिना पहला संभव नहीं हो सकता। तीसरा सूत्र क्या है?

पहला सूत्र हैः विचार।

दूसरा सूत्र हैः निष्पक्षता।

तीसरा सूत्र हैः जागरूकता, अवेयरनेस।

जीवन के प्रति हम सोए-सोए जीते हैं। आंखें बंद किए से, सोए-सोए नींद में से जीते हैं--जाग कर नहीं। इसलिए बहुत सी सच्चाइयां हमारे पास से निकल जाती हैं, उन्हें हम देख भी नहीं पाते।

बुद्ध का जन्म हुआ तो उनके पिता ने ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे पूछाः यह बच्चा क्या बनेगा? उन ज्योतिषियों ने कहा कि या तो यह चक्रवर्ती सम्राट होगा और या एक संन्यासी। बड़े मजे की बात है। मां-बाप, बच्चा चोर हो जाए, हत्यारा हो जाए इससे भी इतने नहीं डरते, जितने संन्यासी होने से डरते हैं। क्योंकि चोर-हत्यारा फिर भी दुनिया का एक हिस्सा होता है, संन्यासी बड़ी दूसरी राह पर चला जाता है। चोर और बेईमान

के रास्ते भी मां-बाप के परिचित रास्ते होते हैं, संन्यासी का रास्ता बड़ा अननोन, अज्ञात होता है। वह बड़े अनजान रास्ते पर जाना है। कोई बाप नहीं चाहता, कोई मां नहीं चाहती।

यद्यपि बुद्ध के मां-बाप गांव में आए संन्यासियों के पैर छूते थे। दूसरे का लड़का संन्यासी हो जाए किसी को क्या लेना-देना है। लेकिन खुद का लड़का संन्यासी हो जाएगा इससे इतने घबड़ा गए कि नगर के सब विद्वानों को बुला कर पूछा कि इसे संन्यासी होने से कैसे बचाएं? उन लोगों ने कहाः एक ही तरकीब है संन्यासी होने से बचाने की, जिंदगी इसे दिखाई न पड़े। यह बेहोश रहे। इसे पता न चले जिंदगी का तो यह फिर संन्यासी नहीं होगा। क्योंकि जिस आदमी को जिंदगी दिखाई पड़ जाती है, उसकी जिंदगी में बदल हो जाती है, क्रांति हो जाती है।

तो बुद्ध को उन्होंने इस भांति पाला जिसमें कि उसे कुछ भी दिखाई न पड़े। कहते हैं, बुद्ध की बगिया के फूल कुम्हलाने के पहले, रात-रात अलग कर दिए जाते थे। कहीं कुम्हलाया हुआ फूल देख कर बुद्ध को यह खयाल न आ जाए कि जिंदगी भी एक दिन कुम्हला जाएगी। बूढ़े लोगों को बुद्ध के आस-पास जाने की आज्ञा न थी, युवा-युवतियां ही उनके पास आते-जाते थे। ताकि बुद्ध को यह खयाल न आ जाए कि जिंदगी एक दिन बुढ़ापे में से भी गुजरती है। बुद्ध युवक हो गए तब तक उन्होंने मृत्यु की खबर न सुनी थी। कहीं मृत्यु की खबर, आघात जीवन में कोई क्रांति न ला दे। फिर बुद्ध युवा हो गए, लेकिन जिंदगी से कब तक किसी को छिपाया जा सकता है। जिंदगी चारों तरफ से हमले किए जाती है रोज, और छिपाने की तरकीब ही खतरा बन गई।

बुद्ध युवा हुए। उस राज्य का यूथ फेस्टिवल होता था, युवक-महोत्सव होता था, बुद्ध उसमें भाग लेने गए। वे अपने रथ पर थे और तभी उन्होंने पहली बार एक बूढ़े आदमी को देखा। अगर उन्होंने बचपन से ही बूढ़े आदमी को देखा होता तो यह चोट इतनी गहरी न होती। बूढ़ा आदमी देखने की आदत हो गई होती। बचपन से उन्होंने बूढ़ा आदमी नहीं देखा था। हम भी रोज बूढ़े आदमी को देखते हैं निकलते अपने करीब से, बुद्ध ने भी देखा निकलते। लेकिन बुद्ध को वह बहुत, बहुत प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ा। अजनबी थे वह बिल्कुल, उन्होंने बूढ़ा आदमी नहीं देखा था।

उन्होंने अपने सारथी को पूछाः इस आदमी को क्या हो गया है? ऐसा आदमी तो मैंने कभी देखा नहीं है। सारथी ने कहाः यह वृद्ध हो गया, बूढ़ा हो गया। अगर आप होते बुद्ध की जगह तो आप कहते, अरे बेचारा! कितनी बुरी बात हो गई। बूढ़ा हो गया। चलो किसी धर्मार्थ अस्पताल में भरती करवा दें, इसका इलाज करवा दें। या सरकार को कहें कि बूढ़ा न होने दे किसी को, ऐसी योजना करे। आपने कोई ऐसी बात सोची होती, लेकिन बुद्ध ने यह नहीं सोचा। बुद्ध ने यह भी नहीं पूछा, यह बूढ़ा कहां रहता है, क्या है, क्या नहीं। सारथी ने जैसे ही कहा, यह आदमी बूढ़ा हो गया है तो बुद्ध ने दूसरी कौन सी बात पूछी? कोई भी विचारशील बात वही पूछेगा।

बुद्ध ने पूछाः क्या सभी मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं? सारथी ने कहाः निश्चित ही सभी मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं। तो बुद्ध ने तीसरी बात कौन सी पूछी? बुद्ध ने पूछाः क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? सारथी ने कहाः आप भी, कोई अपवाद नहीं हो सकता। तो पता है बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने कहाः सारथी रथ वापस लौटा लो, मैं बूढ़ा हो गया। बुद्ध ने कहाः सारथी रथ वापस लौटा लो, मैं बूढ़ा हो गया। अब युवक महोत्सव में जाने से क्या लाभ? वहां तो सब युवा लोग इकट्ठे हुए होंगे, मैं बूढ़ा हो गया।

क्योंकि जो हो ही जाना है, वह हो ही रहा होगा। मैं बूढ़ा हो ही रहा होऊंगा, तभी तो बूढ़ा हो जाऊंगा। कोई अचानक थोड़े ही बुढ़ापा आ जाएगा, रोज-रोज आ रहा होगा। तो मैं बूढ़ा हो ही रहा हूं। थोड़े पल की बात

है, थोड़े क्षण की, थोड़े दिन की कि दुनिया देख लेगी कि मैं बूढ़ा हो गया। लेकिन बूढ़ा होने की प्रक्रिया तो मेरे भीतर चलती ही होगी। मैं बूढ़ा हो ही गया हूं, मुझे वापस लौटा लो। इस बूढ़े को बुद्ध ने जिस भांति देखा, यह आंखें खोल कर देखना है। जागरूक होकर देखना है।

जिंदगी को जो भी जाग कर देखेगा उसकी जिंदगी एक क्रांति हो जाएगी, उसके भीतर सब बदल जाएगा। लेकिन हम तो आंख बंद करके चले जाते हैं, देखते नहीं चारों तरफ क्या हो रहा है? पत्ते वृक्षों से गिर रहे हैं, जवान आदमी बूढ़ा हो रहा है, बूढ़ा आदमी मर रहा है। चारों तरफ मौत, सब तरफ से मौत घेरे चले जाती है और फिर भी हम जीए चले जाते हैं! और जीवन में कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता, मौत जिज्ञासा नहीं बनती! बल्कि अगर कोई आपको पकड़ कर दिखाए कि देखो यह मौत है तो आप कहेंगे, ऐसी अपशगुन की बातें न करें, रहने दें--होगी, मुझे क्या लेना-देना मैं तो जिंदा हूं। हम आंखें चुराते हैं।

जो आदमी मौत से आंखें चुराता है वह आदमी जिंदगी को कभी न देख सकेगा। क्योंकि जिसे मौत को देखने का साहस नहीं वह जिंदगी को भी नहीं देख सकेगा। जिंदगी और मौत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो जिंदगी को बहुत जाग कर देखना जरूरी है उसकी समग्रता में--उसकी कुरूपता, उसका सौंदर्य, उसके गड्ढे, उसकी बुराइयां, उसका अंधकार, उसका प्रकाश--सब देखना जरूरी है। और उसके लिए बहुत सतेज, खुली हुई आंख चाहिए। सोया हुआ आदमी नहीं।

मैंने सुना है एक फकीर के बाबत। तो वह राजस्थान के एक गांव में गया। जैसे मैं यहां बोलता हूं ऐसे उस रात वह वहां बोलता था। जैसे आप यहां इकट्ठे हो गए हैं, उस गांव के लोग वहां इकट्ठे हो गए थे। सामने ही एक आदमी आगे बैठा था और सोया हुआ था। सामने जो लोग आगे बैठते हैं अक्सर सो जाते हैं। कुछ कारण होता है। असल में सामने बैठने का जो मोह है वह सोए हुए आदमी का लक्षण ही है। वह गांव का सबसे बड़ा धनपति था जो सामने बैठा था। और भी संन्यासी गांव में आए थे, लेकिन सब संन्यासियों ने देखा था कि वह आदमी सोता है। लेकिन कौन संन्यासी धनपति को कहे कि तुम सोते हो? क्योंकि सारा संन्यास और सारा धर्म और सारे मंदिर उसी धनपति से चलते हैं। उसे कौन नाराज करे? तो धनपति आंख बंद किए बैठा रहता था, सोता रहता था। दिन भर की मेहनत, थकान के बाद मंदिर सोने के लिए बड़ा अच्छा स्थल है। वह भी सोया रहता था।

वह जो संन्यासी था, लेकिन वह इसे बरदाश्त न कर सका। और संन्यासी तो उससे यही कहते थे कि आप... उसका नाम था आसोजी। उससे कहते थे, आसो जी आप बड़े ध्यानमग्न होकर सुनते हैं। आसो जी बड़े प्रसन्न होते थे। हालांकि वह सोते थे लेकिन संन्यासी उनसे यही कहते थे कि आप बड़े ध्यानमग्न होकर सुनते है। वह बड़े प्रसन्न होते थे। इस बात को सुन कर कोई भी प्रसन्न होता है कि आप ध्यानमग्न हैं, और यह सुन कर नाराज होता है कि आप सो रहे हैं। हालांकि जितने लोग आपको ध्यानमग्न दिखाई पड़ेंगे, सौ में से निन्यानबे सोए हुए होते हैं।

लेकिन यह संन्यासी बहुत गड़बड़ था। इसने बीच में ही भाषण बंद कर दिया और कहाः आसो जी सोते हैं? आसो जी को गुस्सा आ गया। उन्होंने कहाः कौन कहता है मैं सोता हूं? मैं तो आंख बंद करके ध्यानमग्न होकर आपकी बातें सुन रहा हूं। अब आदमी खुद ही अपने को धोखा देना चाहे तो कोई क्या करे? फिर उस फकीर ने बोलना शुरू कर दिया। थोड़ी देर बात चली होगी, फिर उनको नींद लग गई। अब जिसको नींद लगने को आ रही हो, कितनी देर अपने को जगाए रखेगा। थोड़ी देर में फिर नींद आ गई होगी। लेकिन यह फकीर अजीब था, इसने फिर टोक दिया और कहाः आसो जी सोते हो? अबकी बार आसा ेजी को और गुस्सा आ गया।

क्योंकि सारा गांव इकट्ठा था, सारा गांव सुन रहा था। और संन्यासी तो कहते थे, आप ध्यानमग्न होकर सुन रहे हो तो सारा गांव सुनता था, प्रसन्न होता था कि आसोजी बड़े धार्मिक हैं। और यह सारा गांव सुन रहा है, और यह आदमी फिर दुबारा बोला तो आसो जी ने कहा समझते नहीं आप, मैंने कहा कि मैं ध्यानमग्न होकर सुन रहा हूं, मैं सोया नहीं हूं। फिर उस फकीर ने बोलना शुरू किया, थोड़ी देर बात चली होगी फिर आसोजी सो गए। सोए हुए आदमी की बात का कोई भरोसा थोड़े ही है। लेकिन अबकी बार फिर उस संन्यासी ने फिर टोका। लेकिन अबकी बार बड़ी अजीब बात उसने कही। हर बार वह कहता था, आसो जी सोते हो? इस बार उसने कहा, आसो जी जीते हो? नींद में आसो जी ने समझा वही पुराना प्रश्न है, वे बोलेः नहीं-नहीं कौन कहता है? उस फकीर ने कहा कि अब तो बचना बहुत मुश्किल है आपका। अब आप पकड़ में आ गए हैं। वैसे आपने गलती से एक सच्ची बात कह दी हैः जो सोता है, वह जीता भी नहीं है। जीने के लिए जागना जरूरी है।

क्या आपको कभी अनुभव नहीं होता है चौबीस घंटे में कि कभी हमारा जागरण थोड़ा तेज होता है, कभी कम? चेतना बहुत से ग्रेड्स में, चेतना बहुत से तलों पर सोती-जागती रहती है। कभी आपको खयाल होता है? कभी आपको ऐसा नहीं लगता है कि कभी हम ज्यादा जागे हुए मालूम पड़ते हैं? किसी खतरे में आदमी ज्यादा जागा हुआ मालूम पड़ता है, खतरा न हो तो सो जाता है। अगर आपको...

एक घटना मुझे याद आई, उससे शायद समझ में आ सके।

जापान में एक बहुत बड़ा कला गुरु था। और उसकी कला पाइन के जो बड़े-बड़े दरख्त होते हैं, उन पर चढ़ना सिखाने की थी। सीधे दरख्तों पर जहां फिसलने का बहुत भय है, चढ़ना सिखाता था लोगों को। एक युवक उसके पास सीखने आया था। उसने उस युवक को चढ़ने की तरकीब बताई और कहा, चढ़ो। वह बूढ़ा था, नब्बे वर्ष का था गुरु। वह नीचे बैठ गया और युवक चढ़ने लगा। युवक उस ऊंचे, लंबे दरख्त को, आकाश छूते दरख्त की आखिरी-आखिरी शाखा पर पहुंच गया, बिल्कुल ऊपर पहुंच गया। उसके आगे जाने को कोई जगह न थी। वह गुरु बैठा रहा चुपचाप दरख्त के नीचे और दो-चार लोग बैठ कर देख रहे थे। फिर वह युवक वापस उतरना शुरू हुआ। जब जमीन से वह कोई बीस फीट दूर रह गया, तब वह बूढ़ा एकदम उठा और कहाः सम्हल कर उतरना, सम्हल कर।

वह युवक हैरान हुआ! जब वह दरख्त की ऊपर की चोटी पर था तब तो इस पागल ने नहीं कहा कि सम्हल कर चढ़ना, सम्हल कर। अब जब कि वह वापस लौट आया है और जमीन पास आ गई है, खतरा गुजर चुका है, तब यह चिल्ला कर कह रहा है, सम्हल कर उतरना! वह नीचे उतरा और उसने कहाः मैं हैरान हूं, आप बड़े अजीब आदमी मालूम पड़ते हैं। जब मैं खतरे में था तब तो तुम चिल्लाए नहीं सम्हल कर, तब तो तुम चुपचाप आखें बंद किए दरख्त के नीचे बैठे रहे। और जब मैं खतरे के बाहर हो गया था तब तुम चिल्लाए?

उस बूढ़े ने कहाः जब कोई खतरे में होता है तब वह खुद ही जागा हुआ होता है। उस वक्त चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं। खतरा वहीं से शुरू होता है, जहां आदमी खतरे के बाहर होता है। जैसे ही मुझे लगा कि तुम अब जमीन को करीब समझ रहे हो और निश्चिंत उतरने लगे, मैंने देखा कि तुम सोने के करीब आ गए हो तो मैं चिल्लाया कि होश से उतरना, गिरना हो सकता है।

जिंदगी में कुछ क्षणों में, बहुत खतरे के क्षणों में हम जागे हुए होते हैं। बाकी साधारणतः हम सोए हुए होते हैं। तो धार्मिक आदमी सदा जागा हुआ जीएकैसे, कैसे जीए? और जब तक वह जागा हुआ न जीए, तब तक जीवन के सत्य की कोई झलक उसे नहीं मिल सकेगी। सोए हुए आदमी को क्या अनुभव हो सकता है? क्या दर्शन हो सकता है? धार्मिक आदमी कैसे जीए?

तो धार्मिक आदमी वही है जो खतरों में जीता है।

नीत्शे से मरते वक्त किसी ने पूछा कि तुम एक छोटे से सूत्र में बता सकोगे क्या कि सत्य की खोज का रास्ता क्या है? तो उसने कहाः लिव डेंजरसली, खतरे में जीओ! बड़ी अजीब बात कही, बड़ी सच। हम सब तो खतरे से बच कर जीते हैं। सब तरफ से सिक्योरिटी कर लेते हैं, सब तरफ से बैंक-बैलेंस कर लेते हैं, सब तरफ से व्यवस्था कर लेते हैं, मजबूत दीवालें बना लेते हैं; सब इंतजाम कर लेते हैं, कहीं से कोई खतरा नहीं रहने देते। तो फिर हम सो जाते हैं। फिर हम सोए-सोए जीने लगते हैं।

संन्यासी वह है, धार्मिक वह है जो खतरे में जीता है।

एक राजा ने एक महल बनवाया। और उसमें एक ही दरवाजा रखा जिसमें कि चोरी न हो सके। पूरे भवन में एक ही दरवाजा रखा, विशाल भवन बनवाया और एक दरवाजा जिसमें कि चोरी न हो सके। सारी सुरक्षा कर ली उसने। पड़ोस का दूसरा राजा उसके महल की खबर सुन कर देखने आया। उन दोनों ने... उसने अपना महल दिखलाया, पड़ोस का राजा भी बहुत प्रभावित हुआ। और उसने कहा कि बड़ा सुरक्षित महल तुमने बनाया है, इसमें खतरे की गुंजाइश नहीं है। चोर नहीं आ सकता, शत्रु नहीं आ सकता। और दूसरे लोग भी सड़क पर इकट्ठे हो गए थे, दूसरा राजा दूसरे नगर से देखने आया था।

एक बूढ़ा आदमी भी सामने ही खड़ा था। जब परदेसी राजा प्रशंसा कर रहा था उसके महल की, तब वह बूढ़ा आदमी जो सामने ही खड़ा था, अत्यंत दीन-दरिद्र भिखारी मालूम होता था, वह हंसने लगा। उस भवन के मालिक, राजा ने पूछाः क्यों हंसते हो, कोई भूल है? उसने कहाः सिर्फ एक भूल है, एक दरवाजा रखा यह गलती है। यह भी बंद कर दो। इस दरवाजे से तुम्हारी मौत भीतर घुस जाएगी, इसको भी बंद कर दो, तुम भीतर हो जाओ। फिर तुम बिल्कुल सुरक्षित हो जाओगे, फिर तुम मर भी नहीं सकते। क्योंकि मौत को जाने-आने का भी फिर रास्ता नहीं रहा। बात तो उसने ठीक कही। अगर यह राजा इस दरवाजे को भी बंद कर ले तो फिर यह पूरी सिक्योरिटी में हो गया, पूरी सुरक्षा में। फिर कोई खतरा नहीं है। लेकिन तब जिंदगी से भी चूक जाएगा।

जिंदगी एक खतरा है, प्रतिक्षण। एक असुरक्षा, एक इनसिक्योरिटी है। जिंदगी बिल्कुल वैसी ही है जैसे पत्ते पर ओस की बूंद हवा में कंपती रहती है। किसी भी क्षण गिर सकती है। जैसे ओस की बूंद घास के तिनके पर पड़ी होती है, किसी भी क्षण सूरज निकलेगा और भाप बन जाएगी। जिंदगी एक कंपन है। उसे जो ठोस बना लेते हैं और सब तरफ से सुरक्षित कर लेते हैं, वे कब्र बना लेते हैं--अपने ही हाथ अपनी। और फिर उस कब्र में सो जाते हैं।

धार्मिक आदमी वह आदमी है जो जिंदगी की असुरक्षा को, इनसिक्योरिटी को स्वीकार करता है। मानता है और जानता है कि जिंदगी निरंतर खतरे में है। जीना एक खतरा है, मरना एक सुरक्षा है। तो जिंदगी को जो प्रतिक्षण एक असुरक्षा में अनुभव करता है, और जिंदगी असुरक्षा है। जिसे मैंने आज प्रेम किया है, कोई भरोसा है कि कल वह मुझे प्रेम देगा? जिसे मैंने आज मित्र कहा है, कोई भरोसा है कि कल सुबह वह मेरा मित्र रहेगा? जिसे मैंने अपना जाना है, कोई भरोसा है कि वह कल सुबह दुनिया से विदा नहीं हो जाएगा? सब असुरक्षित है।

जिंदगी में कुछ भी सुरक्षित नहीं है। जिंदगी जितनी तीव्र होगी उतना सब असुरक्षित मालूम होगा। इस असुरक्षा में जो जीता है, और सुरक्षा के झूठे इंतजाम नहीं करता... सब इंतजाम झूठे हैं। क्योंकि आज तक कोई आदमी सुरक्षित कहां हो पाया है? मौत सबको हटा कर ले गई, सबके इंतजाम झूठे साबित हो गए। तो जो इंतजाम के झूठेपन को देख लेता है और जिंदगी की असुरक्षा को जीता है, डेंजरसली जीता है, खतरे में जीता है,

प्रतिपल खतरे में जीता है--उस आदमी के भीतर एक जागरण पैदा होता है, एक अवेयरनेस पैदा होती है, वह होश से भर जाता है। उसके भीतर जागरूकता आ जाती है।

आप थोड़ा सोचें अगर एक युवक एक युवती को प्रेम करे, तो जिसे वह प्रेम करता है उसके प्रति पूरी तरह जागा हुआ होता है। लेकिन कल वह उससे शादी कर लेता है और वह उसकी पत्नी बन जाती है, फिर वह उसके प्रति बिल्कुल सो जाता है। फिर उसे देखता भी नहीं। याद करें आपने अपनी पत्नी को कभी देखा है आंख भर कर? नहीं, नींद हो जाती है फिर सब ठीक है। सुरक्षित हो गया, सब बात ठीक है।

बायरन ने शादी की और जिस लड़की से उसने विवाह किया, चर्च से नीचे उतर रहा था उसका हाथ पकड़ कर। अभी शादी हुई थी, चर्च की मोमबत्तियां जली थीं और घंटियां बज रही थीं। अभी मेहमान उतर ही रहे थे सीढ़ियों से। वह अपनी पत्नी का हाथ लेकर नीचे उतर रहा था। गाड़ी में जाकर उसने बिठाया अपनी पत्नी को और उससे कहा कि एक बड़ी अजीब बात का मुझे अनुभव हुआ। कल तक जब तक तू मेरी नहीं थी, मैं तेरे प्रति बहुत जागा हुआ था; आज जैसे ही मैं सीढ़ियां उतर रहा था, तेरा हाथ मेरे हाथ में था लेकिन एक क्षण को मुझे खयाल ही नहीं रहा कि तू साथ में भी है। मुझे एक दूसरी स्त्री दिखाई पड़ गई जो रास्ते पर जा रही थी। और मेरा मन उसके प्रति कामना से भर गया। मैं उसके प्रति तो जागा हुआ था, तेरे प्रति सो गया था। और कल तक, कल तक वह इसके प्रति भी बहुत जागा हुआ था।

कल तक एक खतरा था, एक इनसिक्योरिटी थी। यह पत्नी हो भी सकती थी, नहीं भी हो सकती थी। यह मिल भी सकती थी, खो भी सकती थी। कल तक एक खतरा था, एक कंपन थी। एक तो आदमी जागा हुआ था, चित्त होश से भरा था। आज सुरक्षित हो गई बात, वह पत्नी हो गई। वह मुट्ठी में हो गई, वह घर का एक सामान हो गई, अब कोई चिंता की बात नहीं है। अब कोई खतरा नहीं है। ऐसे हमने सारे तरफ से जीवन को जड़ कर लिया है।

और इस जड़ता के बीच हम निश्चिंतता से सो गए हैं। इस सोने के कारण जो चेतना हमारे भीतर जागनी चाहिए थी, उसके जागने का कोई मौका नहीं रहा। स्मरण रखिए, खोजिए कि आपने जो-जो सुरक्षा बनाई है वह सच्ची है? क्या वह टिकने वाली है? क्या वह सुरक्षा है? और आपको दिखाई पड़ेगाः कोई चीज सुरक्षित नहीं है, जीवन निरंतर एक खतरा है। और जो इस खतरे को अनुभव करता है, वह जागना शुरू हो जाता है।

ये तीन छोटे सूत्र मैंने आज आपसे कहे। कल कुछ और थोड़ी बातें आपसे मुझे करनी हैं। ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहेः विचार का जन्म होना चाहिए, निष्पक्ष चित्त होना चाहिए, जागरूक चेतना होनी चाहिए। ये तीन सूत्र जिसके जीवन में फलित होते हैं उसके जीवन में सत्य के आगमन का मार्ग बन जाता है।

एक छोटी सी कहानी और मैं आपको विदा दूंगा।

एक बहुत दूर से भटकता हुआ एक फकीर अपने देश वापस लौटा। उस देश के राजा का वह बचपन का मित्र था। राजा ने उसे आमंत्रित किया और उसका स्वागत किया। और स्वागत के बाद उससे कहाः मेरे मित्र, तुम सारी जमीन घूम कर आए हो, कुछ मेरे लिए भेंट भी लाए या नहीं। मैं बहुत दिनों से प्रतीक्षा कर रहा हूं कि तुम लौटोगे तो मेरे लिए कुछ लाओगे।

उस फकीर ने कहा कि मैं जमीन के कोने-कोने पर गया और मैंने अनूठी से अनूठी चीजें देखीं, और मेरा हमेशा दिल हुआ कि तुम्हारे लिए कुछ भेंट ले चलूं। तुम जरूर यही पूछोगे, जब मैं लौटूंगा। लेकिन जो चीज भी मैंने लेनी चाही मुझे खयाल आया, तुम इतने बड़े सम्राट हो, तुम्हारी सीमाएं राज्य की इतनी बड़ी हैं कि तुम्हारे

पास यह चीज अब तक जरूर पहुंच गई होगी। तो मैं कोई ऐसी चीज लाना चाहता था जो तुम्हारे पास अब तक न पहुंची हो।

राजा बहुत उत्सुकता से भर गया। उसने कहाः फिर तुम लाए! उस फकीर ने कहाः मैं ले आया हूं, मेरी झोली में रखी है। उस राजा ने झोली छीन ली, हैरान हुआ! उस झोली में क्या ऐसी चीज होगी, छोटी सी फटी झोली थी फकीर की। इसमें क्या होगा जो मेरे पास नहीं है? हाथ डाला तो चकित हो गया और भी ज्यादा, जो निकला वह एक बहुत सस्ती चीज थी। वह दो पैसे का दर्पण था। उस फकीर ने कहाः तुम्हारे पास सब कुछ होगा, लेकिन ऐसी चीज न होगी जिसमें तुम स्वयं को देख सको। मैं यह दर्पण ले आया।

ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। अगर ये आपकी जिंदगी में उतर जाएं, वह दर्पण आपको मिल जाएगा जिसमें आप अपने को देख सकते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

जीवन में शुभ का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से प्रश्न मेरे सामने हैं। सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, लेकिन सभी के उत्तर तो आज संभव नहीं हो पाएंगे। कुछ शेष रह जाएंगे, जिनकी कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा।

सबसे पहले एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा की अनुभूति, उसका प्रसाद, उसका आनंद किन्हीं-किन्हीं क्षणों में अचानक मिल जाता है और फिर-फिर खो जाता है। फिर बहुत प्रयास करने पर भी वह झलक दिखाई नहीं पड़ती, तो हम क्या करें?

मनुष्य के जीवन में निश्चित ही कभी-कभी अनायास ही कोई आनंद का स्रोत खुल जाता है, कोई अंतर्नाद सुनाई पड़ने लगता है, कोई स्वर-संगीत प्राणों को घेर लेता है। सभी के जीवन में ऐसे कुछ क्षण स्मृति में होंगे। फिर हमारा मन करता है उस अनुभूति को और पाने के लिए और तब, तब जैसे उस अनुभूति के द्वार बंद हो जाते हैं। इसमें दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

एक तो जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है और श्रेष्ठ है, वह कभी मनुष्य के प्रयास से नहीं उपलब्ध होता है। मनुष्य बहुत क्षुद्र और छोटा है। उसकी सीमाएं हैं, और आनंद की कोई सीमा नहीं है। जब मनुष्य अनुपस्थित होता है, तभी वे आनंद के द्वार खुलते हैं; और जब मनुष्य बहुत प्रयास करके उपस्थित हो जाता है, तब वे द्वार बंद हो जाते हैं। परमात्मा को आज तक किसी ने प्रयास से नहीं पाया है। अप्रयास से ही, इफर्ट से नहीं, इफर्टलेसनेस में ही उसकी प्रतीति और अनुभव होता है।

मैं किसी को प्रेम दूं, और अगर प्रयास से दूं तो वह प्रेम झूठा हो जाता है। वह अप्रयास से बहे सहज तो ही सत्य होगा। जीवन में जो भी सत्य है, सुंदर है, वह मनुष्य के प्रयास से पैदा नहीं होता। तो अनायास तो अनुभूति मिलती है फिर हम प्रयास करके जब उसे लाना चाहते हैं, वह छूट जाती है।

एक छोटी सी घटना कहूं, उससे शायद मेरी बात खयाल में आए।

एक ईसाई फकीर हुआ, अगस्तीन। तीस वर्षों से निरंतर प्रयास करता था परमात्मा की झलक पाने के लिए। कोई कोर-कसर न छोड़ी थी अपने प्रयास में। तीस वर्ष आंखें आंसू बहा-बहा कर भीग गई थीं। रात और दिन नहीं जानी थी, सोया नहीं था, भोजन नहीं किया था। उसकी ही आकांक्षा में, उसकी ही प्यास में, उसकी ही प्रार्थना में दिन और रात बिताए थे। सूख कर हड्डी हो गया था। लेकिन उसकी कोई झलक का पता न था। बल्कि जितने उसने प्रयास किए थे, जैसे वह उतनी ही दूर होता चला गया था। वह दूर होता चला गया था। उसके प्रयास तीव्र होते चले गए थे। जितने प्रयास तीव्र होते गए उतनी वह और दूर होता चला गया।

एक दिन सुबह रात भर रोने के बाद उठा था वह, और समुद्र के किनारे घूमने निकल गया था। कोई भी न था समुद्र के तट पर, अभी सूरज भी उगने को था। अचानक उसने देखा कि एक पत्थर के पास एक छोटा सा बच्चा खड़ा है। उसकी आंखों से आंसू बह रहे हैं। वह खुद भी रात भर रोता रहा था। यह छोटा सा बच्चा समुद्र के किनारे आंखों में आंसू लिए क्यों खड़ा है यहां? कोई उसके साथ न था। अगस्तीन उसके पास गया और कहाः मेरे बेटे! क्यों रोते हो? क्या हो गया तुम्हें? और अकेले कैसे आए समुद्र-तट पर? उस बच्चे ने कहाः रोने का कारण है।

एक छोटी सी प्याली वह हाथ में लिए था और उसने कहाः इस प्याली में मैं सागर को भरना चाहता हूं। सागर भरता नहीं है, इसलिए रोता हूं। क्या करूं, न रोऊं तो? सागर को भर कर घर ले जाने का मन है मेरा, लेकिन सागर भरता नहीं है। प्याली छोटी पड़ जाती है। उस बच्चे का यह कहना जैसे अगस्तीन के लिए परमात्मा की ध्वनि हो गई।

वह खूब जोर से हंसने लगा और उस बच्चे से बोलाः तू ही ऐसी भूल में पड़ा हो, ऐसा नहीं है। मैं भी ऐसी ही भूल में तीस साल से पड़ा हूं। अपनी बुद्धि की छोटी सी प्याली में परमात्मा के सागर को भरने के लिए मैं भी बहुत रोया हूं। यह हो भी सकता है कि तेरी प्याली में सागर कभी भर जाए, क्योंकि सागर की फिर भी सीमा है। लेकिन मेरी बुद्धि की प्याली में तो परमात्मा कैसे भरेगा, उसकी तो कोई सीमा नहीं? अगस्तीन ने उस बच्चे से कहाः मैं तो अपनी प्याली तोड़े देता हूं।

अगस्तीन नाचता हुआ वापस लौट आया, अपनी कुटी पर। उसके मित्र हैरान हुए, समझा शायद अगस्तीन को वह मिल गया है जिसके लिए उसके प्राण रोते रहे थे। वे सब उसके निकट इकट्ठे हो गए, उसकी आंखों में आज बड़ी अदभुत ज्योति थी। आज उसके प्राणों में अदभुत पुलक थी। आज वह हर्षोन्माद से नाच रहा था। उन्होंने पूछा, अगस्तीन! मिल गया है क्या वह? अगस्तीन ने कहाः नहीं, वह तो नहीं मिला, लेकिन मैंने खुद को खो दिया। और जिस क्षण मैंने खुद को खोया, मैंने पाया कि वह तो सदा से ही मिला हुआ है।

मनुष्य का अहंकार ही बाधा है परमात्मा को पाने में। अप्रयास के क्षणों में कभी अचानक जब मनुष्य का अहंकार सोया होता है, अनुपस्थित होता है उसकी एक झलक किनारे से निकल जाती है। जैसे ही उसकी झलक निकल जाती है, भीतर एक आनंद उमग उठता है। फिर उस आनंद को पकड़ने को हम लालायित हो जाते हैं, लोभी हो जाते हैं। फिर हम उसके पीछे दौड़ने लगते हैं। अहंकार वापस आ जाता है। मैं फिर खड़ा हो जाता हूं, फिर उसे खोजता हूं। खोजता हूं, उस पर कोई हाथ नहीं पड़ता। अहंकार उसे कभी भी नहीं पा सका है।

इसलिए जिन मित्र ने पूछा हैः अगर अनायास उसकी झलक मिलती हो तो फिर प्रयास न करें उसके लिए, क्योंकि प्रयास बाधा बन जाएगा। फिर ऐसे जीएं बिना प्रयास के, बिना इफर्ट के, बिना कोशिश के--तब उसकी झलकें बढ़ती चली जाएंगी। और जिस दिन कोई कोशिश मन में न होगी उसे पाने की, उसी दिन वह उपलब्ध हो जाता है।

संसार और सत्य को पाने की दिशाएं बड़ी विपरीत हैं। संसार में कुछ भी पाना हो तो प्रयत्न करना होता है, प्रयास करना होता है। क्योंकि संसार की सारी दौड़ अहंकार की दौड़ है। परमात्मा को पाने में बात बिल्कुल उलटी है। वहां जो प्रयास करेगा, प्रयत्न करेगा--वह खो देगा उसे। वहां तो जो अप्रयास में छोड़ देगा अपने को, उसे पा लेगा।

नदी में कोई आदमी गिर पड़े तो तैर भी सकता है, और बह भी सकता है। जो तैरता है वह प्रयास कर रहा है, जो बहता है वह प्रयास नहीं कर रहा है। जो बहता है, फिर नदी की ताकत उसे बहाए ले जाती है, जो तैरता है उसे अपने श्रम पर निर्भर रहना होता है। खुद के श्रम की सीमा है, थक जाएगा। लेकिन जो बहा है, उसके सामर्थ की कोई सीमा नहीं है। क्योंकि अपनी शक्ति उसने लगाई ही नहीं है। परमात्मा की खोज में तैरने वाले लोग असफल हो जाते हैं, बहने वाले लोग सफल हो जाते हैं। बहना सीखना पड़ता है, तैरना नहीं। तैरना हमारी अस्मिता है, हमारी ईगो है--मैं पा लूं।

एक छोटी सी कहानी, फिर मैं दूसरे प्रश्न का उत्तर आपको दूं।

एक बड़ी झूठी कहानी, लेकिन बड़ी सच भी है। एक बहुत अदभुत मूर्तिकार हुआ। उसकी मृत्यु आ गई। वह डरा हुआ था, मृत्यु से बचना चाहता था। उसने अपनी ही बारह मूर्तिंया बना लीं और उनमें छिप कर खड़ा हो गया। मौत भीतर आई उसने उन मूर्तियों पर आंख डाली, वह मूर्तिकार भी श्वास को रोके उन्हीं मूर्तियों में छिपा था। मृत्यु पहचान न पाई कौन है असली आदमी जिसे ले जाना है? वहां एक जैसे बारह लोग थे। मौत वापस लौट गई। और उसने परमात्मा को जाकर कहाः वहां तो एक जैसे बारह लोग हैं, मैं किसको लाऊं?

परमात्मा ने मौत के कान में एक सूत्र कहा। कहा, इस सूत्र को बोल देना जो असली आदमी है, वह अपने आप बाहर निकल आएगा। वह मौत वापस लौटी, वह फिर उस कमरे में गई जहां पर मूर्तियों में छिपा हुआ मूर्तिकार खड़ा था। उसने जाकर मूर्तियों पर गौर से दृष्टि डाली और इसके बाद वह जोर से बोलीः और तो सब ठीक है, एक छोटी सी भूल रह गई है। वह मूर्तिकार बोल उठा, कौन सी भूल? उस मृत्यु ने कहाः यही कि तुम अपने को नहीं भूल सकोगे। बाहर आ जाओ। तुम यह न भूल सके कि तुमने इन मूर्तियों को बनाया है। तुम यह न भूल सके कि तुम बनाने वाले हो। अगर इतना भी तुम भूल जाते तो फिर तुम्हें खोजने का मेरे पास कोई उपाय न था।

अहंकार जहां खड़ा है वहां मृत्यु से तो मिलन हो सकता है, लेकिन अमृत से नहीं। जहां अहंकार नहीं है, वहां अमृत से मिलन है। वह अमृत ही परमात्मा है। वह अमृत ही आनंद है। वह अमृत ही सत्य है। छोड़ दें अपने को, ताकि वह आ सके। मत अपने को बीच में खड़ा करें, ताकि दीवाल बन जाए। हमारे अतिरिक्त परमात्मा और हमारे बीच कोई भी नहीं है। हम जितना प्रयास करते हैं उतना ही यह मेरा "मैं" मजबूत होता चला जाता है। उतनी ही दीवाल मजबूत होती चली जाती है। उतनी ही उसकी झलकें मिलनी कठिन हो जाती हैं। अपने को छोड़ दें, अपने को बिल्कुल छोड़ दें--जैसे नहीं हैं। जिस क्षण आप नहीं है, उसी क्षण द्वार मिल जाता है।

कबीर ने कहा हैः मैं बांस की एक पोंगरी हूं, एक बांसुरी हूं। उसके स्वर मेरे भीतर से बहते हैं। अगर मैं ठोस हो जाऊं तो उसके स्वर बहने बंद हो जाएंगे। चूंकि मैं पोली हूं, भीतर ठोस नहीं हूं; उसके स्वर मुझसे बह पाते हैं। हम जितने ठोस हैं उतने ही उसके स्वर हमारे भीतर से नहीं बह पाते हैं। हम जितने खाली हो जाते हैं, रिक्त अपने "मैं" से, अपने प्रयास से--उतने ही उसके स्वर हमारे भीतर बहने शुरू हो जाते हैं। वह तो निरंतर द्वार पर खड़ा है, लेकिन हमारे द्वार बंद हैं। और अपने ही अहंकार से बंद हैं।

इसलिए यदि अप्रयास में अनायास उसकी झलक मिली हो तो यह सूत्र समझ लें, इसमें सारी बात छिपी है। इसमें यह छिपा है कि फिर प्रयास मत करें, छोड़ दें अपने को, उसकी झलकें मिलेंगी। और जिस दिन आप पूरा छोड़ देंगे, उस दिन वह पूरा मिल जाता है। अपने को हटा लें।

एक और मित्र ने पूछा हैः जीवन में दुख ही दुख मालूम होता है, क्या करें? जीवन में सब बुरा-बुरा ही मालूम होता है। निराशा और उदासी मालूम होती है, क्या करें?

जीवन में न तो दुख है और न सुख। जीवन को तो जैसा हम देखने में समर्थ हो जाते हैं, वह वैसा ही हो जाता है। जीवन तो वैसा ही है जैसी देखने की हमारे पास दृष्टि होती है। हमारे ही बीच इसी जीवन में वे लोग भी जीते हैं जो आनंद से भरे होते हैं, और वे लोग भी जो दुख और अंधकार से। जीवन यही है, देखने की दृष्टियां भिन्न होती हैं। अगर हमनें जीवन में उदासी और अंधकार और दुख और पीड़ा को ही देखने की दृष्टि को अर्जित कर लिया हो तो जीवन के आनंद से हम वंचित रह जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मैंने सुना है, एक मां अपने बच्चे से परेशान थी। वह किसी भी तरह के भोजन में कोई रुचि न लेता था। और हर तरह के भोजन में कुछ न कुछ आलोचना, शिकायत खड़ी कर देता था। वह किसी तरह के वस्त्रों में भी कोई रुचि न लेता था, और हर तरह के वस्त्रों में कोई न कोई भूल-चूक खोज लेता था। वह किन्हीं मित्रों में भी कोई रुचि न लेता था, और हर मित्र में कोई न कोई खराबी खोज लेता था। उसकी मां घबड़ा गई। उसका भविष्य सुखद न था। जिसकी दृष्टि हर जगह भूल ही और अंधकारपूर्ण पक्ष को खोज लेने की हो उसका जीवन नरक हो जाएगा। वह घबड़ाई, उसे एक मनोवैज्ञानिक के पास ले गई। सबसे बड़ा प्रश्न तो उसके भोजन का था। क्योंकि वह भोजन करना ही बंद कर दिया था। हर चीज में--दूध में उसे बास आती थी, रोटियां उसे पसंद न थीं; इस चीज में यह खराबी थी, उस चीज में वह खराबी थी। और सब तो ठीक था, लेकिन भोजन के बिना तो जीना भी कठिन है। वह एक बड़े मनोवैज्ञानिक के पास ले गई।

उस मनोवैज्ञानिक की बड़ी ख्याति थी। वह न मालूम कैसे-कैसे विक्षिप्त लोगों को भी ठीक कर चुका था। यह तो एक छोटा सा बच्चा था, अभी जीवन की शुरुआत थी। इसे ठीक करने में कौन सी कठिनाई होने वाली थी। उस मनोवैज्ञानिक ने उस बच्चे को बहुत तरह से समझाया। भोजन की खूबियां समझाईं, फायदे समझाए, बहुत अच्छी-अच्छी मिठाइयां बुलवाईं, उस बच्चे के सामने रखीं, लेकिन उसने कोई न कोई आलोचना निकाल दी। आलोचक था जन्मजात, उसने कोई न कोई बात निकाल दी कि इसमें ये भूल है, इसका रंग मुझे पसंद नहीं है, इसकी बास मुझे पसंद नहीं। इसे खाऊंगा तो वमन हो जाएगा।

बहुत... मनोवैज्ञानिक भी थोड़ा घबड़ाया, लेकिन उसकी मां के सामने वह यह बताना नहीं चाहता था कि मैं घबड़ा गया हूं इस छोटे से बच्चे से। आखिर उसने उसी से पूछा कि फिर तू ही बता, इस जमीन पर कोई भी चीज तुझे खाने जैसी लगती है? उसने कहाः हां, मैं केंचुए खाना पसंद करूंगा। वह भी घबड़ाया कि... मां भी घबड़ाई; केंचुए वर्षा में, बाहर वर्षा के दिन थे और केंचुए बाहर थे। मनोवैज्ञानिक उससे हारना नहीं चाहता था। उसने सोचा कि शायद यह केंचुए खाने की बात कह कर मुझे डराना भर चाहता है, खाएगा कैसे? उस बच्चे से हारना नहीं चाहता था। वह बाहर गया और एक प्लेट में दस-पंद्रह केंचुए वर्षा से उठा कर ले आया। उस बच्चे के सामने रखे। उस बच्चे ने कहाः ऐसे नहीं, मैं तले हुए केंचुए खाना पसंद करूंगा। आपको शर्म नहीं आती, गैर-तली हुई चीज मुझे देते हैं? नहीं हारना चाहता था वह मनोवैज्ञानिक। वह बेचारा गया, उन केंचुओं को तल कर लाया। उसके प्राण खुद घबड़ा रहे थे कि क्या कर रहा है।

लेकिन उस बच्चे को वह चाहता था किसी भी तरह निकटता में ले ले, घनिष्टता बन जाए, उसकी कोई मांग पूरी हो जाए तो शायद वह मेरी बातें समझ सके। वह केंचुए लेकर आयाः उस बच्चे ने कहाः इतने नहीं, मैं केवल एक केंचुआ खाना पसंद करूंगा। वह बाहर गया सारे केंचुए फेंक कर एक केंचुआ ले आया। उसके सामने प्लेट पर रखा और कहाः लो खाओ। उसने कहाः क्या मैं अकेला खाऊंगा, आधा आप खाइए। नहीं हारना चाहता था वह, केंचुआ खाने का जरा भी मन नहीं था। प्राण घबड़ा रहे थे, लेकिन उस बच्चे को जीतना जरूरी था। तो उसने आधा केंचुआ खा गया किसी तरह आंख बंद करके। और तब उसने बड़े गुस्से से उससे कहाः क्योंकि उसने केंचुआ उसको खिलवा दिया था, उस बच्चे से कहाः अब खाओ। बच्चा रोने लगा। उसने कहाः आपने मेरा आधा वाला, मेरा आधा वाला खा लिया। यह आपका आधा वाला है, आपने मेरा हिस्सा खा लिया। उस मनोवैज्ञानिक ने हाथ जोड़े और उसकी मां से कहाः यह लाइलाज है, इसका इलाज करना बहुत मुश्किल है। इसे दिखाई ही नहीं पड़ता कुछ सिवाय शिकायत के।

हममें से भी बहुत लोग हैं जिन्हें जीवन में सिवाय शिकायत के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। जीवन का कसूर नहीं है इसमें, हमारा ही कसूर है। हमारे देखने का ढंग गलत है। हमारी दृष्टि भूल भरी है। एक आदमी चाहे तो गुलाब के फूल के एक पौधे के पास खड़ा होकर देख सकता है। ईश्वर की निंदा कर सकता है। क्रोध से भर सकता है। दुख और चिंता से... कैसी है यह दुनिया, मुश्किल से एकाध फूल लगता है, और हजार कांटें होते हैं? हजार कांटों में एक फूल के लिए कौन खुश होगा? तो कोई देख सकता है कि हजारों कांटें हैं, और एक फूल है इसमें खुशी की बात क्या है?

लेकिन कोई दूसरा व्यक्ति यह भी देख सकता हैः कितनी अदभुत है यह दुनिया! जहां हजार कांटें लगते हैं, वहां भी एक फूल के पैदा होने की संभावना है। कोई ऐसा भी देख सकता है। और इस देखने के ऊपर निर्भर करेगा उनके पूरे जीवन का ढांचा। उनके पूरे जीवन की गतिविधि। कोई आदमी देख सकता हैः सूरज से चमकता हुआ एक दिन होता है, और दोनों तरफ दो अंधेरी रातें होती हैं। और तब उसे लगेगा--दो अंधेरी रातें, और बीच में छोटा सा प्रकाश भरा दिन, कैसी बुरी है यह दुनिया? और कोई यह भी देख सकता हैः दो चमकते हुए दिन, बीच में छोटी सी अंधेरी रात होती है। कितनी भली है ये दुनिया! यह हमारे देखने पर निर्भर होता है। क्या हम जीवन के प्रकाशोज्जवल पक्ष को देखने को उत्सुक हुए हैं, या कि उसके अंधकार पूर्ण पक्ष को? असल में हमारी आदत नहीं है यह।

एक प्रोफेसर अपनी कक्षा में अपने बच्चों को कोई बात समझा रहा था। पीछे ब्लैक बोर्ड था। उसने उस पर एक बड़े कागज, सफेद कागज का टुकड़ा चिपकाया। उस कागज पर छोटा सा एक काला बिंदु बनाया। और फिर अपने विद्यार्थियों से पूछाः तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है, यहां क्या है? हर विद्यार्थी ने हाथ उठा दिए, सभी को दिखाई पड़ रहा था। और हर एक से उसने पूछा, क्या तुम्हें दिखाई पड़ता है? विद्यार्थियों ने कहाः एक छोटा सा काला बिंदु दिखाई पड़ता है। पूरी कक्षा में पूछने के बाद वह जोर से हंसने लगा और उसने कहाः मैं हैरान हूं, इतना बड़ा यह सफेद कागज किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता! उस कागज पर बना हुआ छोटा सा काला बिंदु सबको दिखाई पड़ता है, इतना बड़ा सफेद कागज लगा है, किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता है। एक विद्यार्थी न था उस कक्षा में जिसने यह कहा हो कि बोर्ड पर सफेद कागज मुझे दिखाई पड़ता है। नहीं, सफेद कागज पर काला बिंदु सबको दिखाई पड़ रहा था।

हम सारे लोग भी जीवन को इसी तरह देखते हैं। उसके फूल हमें दिखाई नहीं पड़ते, कांटे दिखाई पड़ते हैं। उसकी शुभ्रता हमें नहीं दिखाई पड़ती, उसकी कालिमा हमें दिखाई पड़ती है। उसका प्रेम हमें नहीं दिखाई पड़ता, उसकी घृणा दिखाई पड़ती है। उसका आनंद नहीं दिखाई पड़ता, उसका दुख दिखाई पड़ता है। और तब हम इसको संग्रह करते चले जाते हैं। फिर सारा चित्त हमारा इस तरह निर्मित हो जाता है कि फिर हम इसी को खोज पाते हैं, इसी को देख पाते हैं। और तब अगर जीवन नरक हो जाता हो तो आश्चर्य कैसा है? जीवन स्वर्ग भी हो सकता है।

स्वर्ग और नरक मनुष्य के जीवन को देखने के दृष्टिकोण हैं। न तो नरक कहीं नीचे है, और न कहीं स्वर्ग ऊपर। मनुष्य की दृष्टि में वे छिपे हैं। कैसे हम देखते हैं? तो यदि दुख पाना है तो जीवन में अंधेरी रातों को खोजें। और अगर आनंद की तरफ आखें उठानी हैं तो जीवन में फूल भी खिलते हैं, उनको देखें। जो आप देखेंगे उससे आपकी दृष्टि, देखने की क्षमता, आपका एटिट्यूड निर्मित होता जाएगा, बनता जाएगा। आज अगर आप दिन भर फूल देखेंगे तो कल फूलों को देखने की क्षमता आपकी विकसित हो जाएगी। अगर आज आप दिन भर कांटे

देखेंगे तो कल सुबह से ही कांटों से मिलना सुनिश्चित है। तो रोज-रोज पल-पल जब हम जी रहे हैं तब जीवन में प्रकाश कहीं हो, उसे खोजते हुए जीना चाहिए; आनंद कहीं हो, उसकी तलाश में जीना चाहिए।

एक फकीर एक रात अपने घर में बैठा हुआ था। कोई बारह बजे होंगे, कुछ पत्र लिखता था। और तभी किसी ने द्वार पर धक्का दिया। द्वार अटके थे, जिसने धक्का दिया था वह भीतर आ गया। जो आदमी भीतर आया था, उसकी कल्पना भी न थी कि फकीर जागता होगा। वह उस गांव का सबसे प्रमुख चोर था। लेकिन फकीर जागा हुआ था तो वह घबड़ाया। उसने छुरा बाहर निकाल लिया। समझा कि कोई झगड़े-झंझट की स्थिति बनेगी। लेकिन फकीर ने कहाः मेरे मित्र, छुरा भीतर रख लो। तुम किसी बुरे आदमी के घर में नहीं आए हो कि छुरे की जरूरत पड़े। छुरा अंदर कर लो, और बैठ जाओ। जरा मैं चिट्ठी पूरी कर लूं, फिर तुमसे बात करूं। वह घबड़ाहट में बैठ गया। फकीर ने अपना पत्र पूरा किया और उससे कहाः कैसे आए इतनी रात? और इतना बड़ा नगर है, इतनी-इतनी बड़ी हवेलियां हैं, इतने-इतने बड़े महल हैं और तुमने मुझ गरीब की कुटिया पर ध्यान दिया, कैसे आए? उस चोर ने कहाः अब आप जब पूछ ही लिए हैं तो बताना जरूरी हो गया है। और शायद आपसे मैं झूठ न बोल सकूं। मैं चोरी करने आया हूं।

फकीर ने ठंडी श्वास ली और उसने कहाः बड़े नासमझ हो। भलेमानुष! एकाध-दो दिन पहले खबर तो कर देते तो मैं कुछ इंतजाम कर रखता। यह फकीर की झोपड़ी है। यहां हमेशा कुछ मिल जाए, यह तो बहुत मुश्किल है। और मुझे क्या पता था, आज सुबह ही एक आदमी कुछ रुपये भेंट करने आया था, मैंने वापस कर दिए। तुम्हारा अंदाज होता तो मैं रोक कर रखता। आगे जब भी आओ ऐसा कभी मत करना कि बिना कहे, बिना खबर किए आ जाओ। थोड़े से रुपये पड़े हैं, नाराज न हो तो मैं उन्हें तुम्हें दे दूं। दस रुपये उसके पास थे। उसने कहाः उस आले पर दस रुपये रखे हैं, वह तुम ले लो।

वह चोर तो घबड़ाया हुआ था। उसकी समझ के बाहर थी ये बातें। चोरी उसने बहुत की थी, लेकिन ऐसा आदमी कभी मिला न था। वह जल्दी से घबड़ाहट में दस रुपये उठाया तो उस फकीर ने कहाः इतनी कृपा कर सकोगे क्या, कि एक रुपया छोड़ दो। सुबह-सुबह मुझे जरूरत भी पड़ सकती है। एक रुपया मुझ पर उधारी रही, कभी न कभी चुका दूंगा। उसने जल्दी से रुपया रखा, और वह भागने लगा बाहर। तो उस फकीर ने कहाः मेरे मित्र, रुपये तो कल खत्म हो जाएंगे, उन पर इतना भरोसा मत करो। कम से कम मुझे धन्यवाद तो देते जाओ। धन्यवाद बाद में भी काम पड़ सकता है। उस चोर ने उसे धन्यवाद दिया, और वह चला गया। बाद में वह पकड़ा गया। उस पर और चोरियां भी थीं, यह चोरी भी थी। इस फकीर को भी अदालत में जाना पड़ा।

वह चोर घबड़ाया हुआ था कि अगर उस फकीर ने इतना भी कह दिया कि हां यह आदमी चोरी करने आया था, तो फिर और किसी गवाही की कोई जरूरत नहीं है। वह इतना जाना-माना आदमी था, उसकी बात पर्याप्त प्रमाण हो जाएगी। वह डरा हुआ खड़ा था। मजिस्ट्रेट ने पूछाः उस फकीर को, आप इस आदमी को पहचानते हैं? उस फकीर ने कहाः पहचानने की बात कर रहे हैं, ये मेरे मित्र हैं। और मित्र तो तभी पहचाना जाता है न, दुख में जो अपने पर भरोसा करे, वही तो मित्र है। एक रात जब इस व्यक्ति को जरूरत पड़ गई थी तो यह किसी महल में नहीं गया, मेरे झोपड़े पर आया था। मेरा मित्र है, मुझ पर विश्वास करता है। मजिस्ट्रेट ने पूछाः इसने आपकी कभी चोरी की थी? उसने कहाः कभी भी नहीं। मैंने इसे नौ रुपये भेंट किए थे। और एक रुपया अब भी इसका मेरे ऊपर उधार है जो मैं चुका नहीं पाया। वह मुझे इसका चुका देना है। और चोरी का तो सवाल ही नहीं है। मैंने इसे रुपये दिए थे, इसने मुझे धन्यवाद दे दिया था। बात समाप्त हो गई थी।

वह चोर तीन वर्ष बाद छूटा। और उस फकीर के झोपड़े पर पहुंच गया। और उसने कहा, उस दिन तुमने कहा था, मित्र हूं। और इन तीन वर्षों में निरंतर सोचता रहा, तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई भी मित्र नहीं है। और उस दिन तो रात आया था जाने को, अब न जाने को आ गया हूं। अब यहां से नहीं जाऊंगा। तुमने मेरी जिंदगी बदल दी, उस चोर ने कहा। उस फकीर ने कहाः मैंने तो कुछ भी नहीं किया। उस चोर ने कहाः तुम पहले आदमी हो जिंदगी में जिसने मेरे भीतर भी कुछ अच्छाई देखी। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरी जिंदगी का कोई प्रकाशोज्जवल पहलू देखा। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरी आत्मा को चुनौती दे दी। तुम पहले आदमी हो जिसने मेरे भीतर के सारे संगीत को खींच कर बाहर ला दिया। और तो जो भी मुझे मिला था उसने मेरा अंधेरा पहलू देखा था। और जब सारी दुनिया मुझमें अंधकार देखती थी तो मैं धीरे-धीरे उसी अंधकार में घिरता चला गया। और उसी अंधकार को मैंने स्वीकार कर लिया था। तुमने मेरे जीवन को चुनौती दे दी, तुमने पहली दफा मुझे यह खयाल पैदा कर दिया--मैं भी एक अच्छा आदमी हो सकता हूं।

तो जब हम जीवन में आनंद को, शुभ को, मंगल को, प्रकाश को देखना शुरू करते हैं तो न केवल हमारी दृष्टि आनंद से भर जाती है, बल्कि हम जहां भी मंगल और शुभ को देखते हैं वहां भी हम चुनौती खड़ी कर देते हैं--उस व्यक्ति के लिए भी कि उसके भीतर से शुभ का आविर्भाव हो जाए, और विकास हो जाए। यह दुनिया इतनी बुरी, बुरी दिखाई पड़ रही है, इस कारण नहीं कि लोग इतने बुरे हैं, बल्कि इस कारण कि सभी लोगों को बुराई के अतिरिक्त देखने की और कोई आदत नहीं है।

और अगर इतने लोग यहां बैठे हैं, वह सभी मुझमें बुराई देखने लगें और वे सभी मेरी बुराई की चर्चा करने लगें, और सभी मेरे अंधकार को उघाड़ने लगें तो मैं कितनी देर, कितनी देर उनके खिलाफ खड़ा रह सकूंगा? धीरे-धीरे वे सब मिल कर मुझे विश्वास दिला देंगे कि मैं बुरा आदमी हूं। वे धीरे-धीरे मुझे इतने क्रोध से भर देंगे कि मुझे ऐसा लगेगा कि ठीक है तुम जो कहते हो, मैं उससे भी ज्यादा बुरा हूं। मेरे भीतर शुभ के आविर्भाव की सारी संभावना समाप्त हो जाएगी।

तिब्बत के एक गांव में मारपा नाम का एक साधु था। एक आदमी ने आकर मारपा से कहाः आप हमारे गांव चलिए, कुछ दिन वहां ठहरिए। मारपा ने कहाः उस गांव में जिस गांव से तुम आए हो, एक आदमी है जो बांसुरी बहुत अच्छी बजाता है। सुना है कभी, देखा है उसे? वह आदमी बोलाः वह क्या बांसुरी बजाएगा। शराब पीता है, जुआ खेलता है, बेईमान है--वह क्या बांसुरी बजाएगा? मारपा ने कहाः मैं तुम्हारे गांव न जाऊंगा। एक दूसरा आदमी उसके जाने के बाद आया, और उसने कहा कि आप हमारे गांव चलें और यह चतुर्मास वहीं ठहर जाएं। मारपा ने कहाः मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक आदमी है जो बांसुरी बजाता है? बहुत अच्छी बांसुरी बजाता है। सुना है कभी उसे? उस आदमी ने कहाः इतना बेईमान है वह, इतना चोर है, इतना निपट अनैतिक है--वह क्या बांसुरी बजाएगा, उसकी बांसुरी कौन सुनने जाएगा? मारपा ने कहाः रहने दो, तुम्हारे गांव मैं न जा सकूंगा। और तीसरा आदमी उस सांझ को आया जिसका निमंत्रण उसने स्वीकार कर लिया। उस तीसरे आदमी से उसने कहा है कि मैंने सुना है, तुम्हारे गांव में एक बेईमान, चोर, अनैतिक आदमी है। उसने कहाः मुझे पता नहीं है, लेकिन वह बांसुरी इतनी अच्छी बजाता है कि मैं मान नहीं सकता कि वह चोर हो सकता है। उसने कहाः मैं तुम्हारे गांव चलता हूं। तुम्हारे गांव में जिंदगी की अच्छाइयां देखने वाले लोग हैं। जिस गांव में अच्छाइयां देखने वाले लोग हैं, वह गांव जमीन पर स्वर्ग बन जाता है।

हमने अपनी जमीन को नरक बना लिया है। दुख बाहर नहीं है, हमारी दृष्टि में है। और आनंद भी बाहर नहीं है, वह भी हमारी दृष्टि में है। इसलिए बाहर मत थोपें अपने दुख को, खुद की दृष्टि को समझें, खोजें और

उस दृष्टि में ही आपको कारण मिल जाएंगे। और बाहर की दुनिया अगर नरक हो तब तो फिर कोई आदमी कभी आनंदित नहीं हो सकता है। क्योंकि बाहर की दुनिया को बदलने की सामर्थ्य किसमें हैं? लेकिन अगर भीतर की दृष्टि में नरक हो, तब यह हमारे हाथ में है कि हम स्वर्ग में प्रवेश कर जाएं। क्योंकि भीतर की दृष्टि कोई भी व्यक्ति जब चाहे अपनी बदल ले सकता है।

इसलिए मैं प्रार्थना करूंगाः अपनी दृष्टि में खोजें कि दुख कहां है, पीड़ा कहां है--वहां देखें, और वहां कारण स्पष्ट मिल जाएंगे। और उन कारणों को बदलना जरा भी कठिन नहीं हैं। क्योंकि कोई भी आदमी दुख में रहने को राजी नहीं है। अगर उसे यह पता चल जाए कि मैं ही अपने दुख का स्रष्टा हूं तो इसको बदलने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। यह पता ही नहीं होता कि मैं ही अपने दुख का स्रष्टा हूं। हम समझते हैं कि बाकी सब लोग, बाकी दुनिया में दुख है। और इसलिए फिर हम पीड़ा में घुलते चले जाते हैं, घुलते चले जाते हैं। और कोई मार्ग नहीं मिलता।

मार्ग है, स्वयं में मार्ग है। इस तरफ थोड़ा विचार करेंगे तो बात दिखाई पड़ सकती है।

एक मित्र ने पूछा हैः आपने कल कहा था कि आदमी जितना बाहर से सुंदर होता है उतना ही अंदर से खराब होता है, इसके बारे में हमें आपको क्या समझना चाहिए?

बहुत ठीक बात पूछी है, लेकिन मेरी बात समझ नहीं पाए। मैंने यह नहीं कहा कि बाहर से जो सुंदर होता है, वह भीतर से खराब होता है। मैंने यह कहाः बाहर के सौंदर्य की खोज भीतर की कुरूपता को छिपाने के लिए होती है। इन दोनों बातों में बड़ा फर्क है। मैंने यह नहीं कहा कि बाहर से जो कुरूप होता है, वह भीतर से सुंदर होता है। न मैंने यह कहा है कि बाहर से जो सुंदर होता है, वह भीतर से कुरूप होता है। मैंने कहा है यह कि बाहर के सौंदर्य की खोज भीतर की कुरूपता को छिपाने का उपाय है। उससे कुरूपता छिप जाती हो, लेकिन सुदंर नहीं बन पाती है। लेकिन जो भीतर की कुरूपता को खोज ले और भीतर के जीवन को सुंदर बना ले, वह बाहर से तो अपने आप सुंदर हो जाता है।

बाहर के सुंदर हो जाने में कोई कठिनाई नहीं है। जिसके भीतर प्रकाश जल जाए, उसके तो बाहर भी प्रकाश फैल जाता है। जिसके भीतर सुगंध आ जाए, उसके बाहर भी सुगंध आ जाती है। लेकिन भीतर की दुर्गंध को दबाने के लिए जो बाहर की सुगंध खोजता है, वह भूल में है। वह मैंने आपसे कहा था। मैं तो सब तरह के सौंदर्य का प्रेमी हूं। लेकिन जिस सौंदर्य के पीछे कुरूपता छिपी हो, वह सौंदर्य खतरनाक है। इसलिए नहीं कि वह सौंदर्य है, बल्कि इसलिए कि वह एक बड़ी कुरूपता को छिपाने का आवरण बन गया है। और वह कुरूपता उसके कारण छिपी रह जाएगी।

एक बहुत पुरानी कथा है। पृथ्वी बन गई थी और सारे लोग उसमें आबाद हो गए थे। और तब अंत में परमात्मा ने सौंदर्य को और कुरूपता को बनाया। सौंदर्य और कुरूपता की देवियां आकाश से पृथ्वी पर उतरीं। आकाश से पृथ्वी तक आने में बहुत धूल-धवांस उनके कपड़ों पर पड़ गईं। वे एक तालाब के किनारे रुकीं और उन्होंने कहाः हम स्नान कर लें। उन दोनों ने वस्त्र छोड़ दिए किनारे पर, और वे तालाब में वे स्नान करने को उतर गईं। सौंदर्य की देवी तैरती हुई आगे निकल गई। शायद कुरूपता की देवी यह प्रतीक्षा ही कर रही थी कि वह थोड़ी आगे निकल जाए। वह शीघ्र बाहर निकली, और उसने सौंदर्य की देवी के कपड़े पहने और भाग खड़ी हुई। सौंदर्य की देवी ने देखा, कुरूपता की देवी उसके कपड़े पहन कर भाग गई थी। वह बाहर आई, वह नग्न ख.ड़ी

थी। सुबह होने के करीब थी। गांव के लोग जगने लगे थे। अब सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि वह कुरूपता के कपड़े पहन ले। नंगे रहना बड़ा मुश्किल था। उसने वह कपड़े पहने।

वह सौंदर्य की देवी कुरूपता के कपड़े पहन कर कुरूपता की देवी के पीछे अब तक सुनते हैं भागी चली जा रही है। लेकिन वह कपड़े उसने अभी तक वापस नहीं लौटाए हैं। वह भागती ही चली जा रही है, भागती ही चली जा रही है। कुरूपता सौंदर्य के वस्त्र पहन लेना चाहती है, ताकि छिप जाए। मैंने यह कहा कि ऐसे बाह्य सौंदर्य की खोज में खयाल करना, कहीं भीतर की कुरूपता को छिपाने का आग्रह तो नहीं है? अगर है तो भीतर की कुरूपता ही मिटाने की कोशिश करना, ढांकने की नहीं। वह मिट जाएगी तो भीतर तो सुंदर होगा, उस सुंदर की किरणें बाहर तक फैल जाएंगी।

जीवन सुंदर हो, सर्वांग सुंदर हो, यह कौन न चाहेगा? लेकिन जीवन भीतर से बाहर की ओर सुंदर हो, बाहर से केवल सुंदर न हो। क्योंकि बाहर से सौंदर्य फिर बहुत खतरनाक हो जाता है। आत्मघात हो जाता है, आत्मवंचना हो जाती है। और बाहर के सौंदर्य से मेरा मतलब आप समझ गए होंगे।

अगर ज्ञान की बात हो तो हम बाहर से शब्द सीख लेते हैं, और भीतर अज्ञान छिपा लेते हैं। अज्ञान कुरूप है। सुंदर-सुंदर शब्द सीख लेते हैं, शास्त्रों के वचन सीख लेते हैं। वे ऊपर से चिपक जाते हैं। भीतर, भीतर अज्ञान खड़ा रह जाता है। अगर नीति का सवाल हो तो भीतर, भीतर वासनाएं सरकती रहती हैं, ऊपर हम ब्रह्मचर्य के व्रत ले लेते हैं। भीतर सेक्स खड़ा होता है, ऊपर ब्रह्मचर्य के वस्त्र खड़े हो जाते हैं। भीतर क्रोध होता है, ऊपर हम शांत मुख-मुद्राएं सीख लेते हैं। भीतर आंसू होते हैं, ऊपर हम मुस्कुराहट चिपका लेते हैं। ऐसा हम जीवन को धोखा दे देते हैं। भीतर कुछ होता है, बाहर हम कुछ हो जाते हैं।

और यह इससे इतना तनाव, इतना टेंशन पैदा होता है क्योंकि हम प्रतिक्षण भीतर कुछ होते हैं जो हम असली हैं, और बाहर हम कुछ होते हैं जो हम नकली हैं। और इन दोनों के बीच एक द्वंद्व, एक कांफ्लिक्ट चलती रहती है जो जीवन के सारे आनंद को क्षीण कर देती है। सारी शक्ति को पी जाती है। भीतर से क्रांति होनी चाहिए, बाहर से नहीं। भीतर से कुछ बदल आनी चाहिए, बाहर से नहीं। भीतर की बदल बाहर की बदल बन जाएगी। लेकिन बाहर की बदलाहट भीतर की बदलाहट नहीं बन सकती है।

क्योंकि भीतर हैं हमारे प्राण, भीतर है हमारा केंद्र, भीतर हैं हमारी जड़ें। जो उन जड़ों को भूल जाता है और पत्तों की फिकर करता है उसका वृक्ष आज नहीं, कल सूख जाएगा। और तब फिर उसे प्लास्टिक के पत्ते लाकर बाहर लगा लेने पड़ेंगे, और प्लास्टिक के फूल बाजार से खरीद लाने पड़ेंगे। पहले कागज के फूल मिलते थे। अब उनसे भी ज्यादा मजबूत नकली फूल मिलने शुरू हो गए हैं। वे प्लास्टिक के हैं। उनको लगा कर घर में हम बैठे रह जा सकते हैं। धोखा हो सकता है किसी को फूलों का, लेकिन प्लास्टिक का फूल भी फू ल है कोई?

ऐसे हमने जिंदगी में भी प्लास्टिक के फूल खोज लिए हैं। तो मैंने जो कहाः मैं फूलों का दुश्मन नहीं हूं, फूलों से मुझे प्रेम है। आपके घर में फूल हों इससे ज्यादा खुशी की बात क्या है? लेकिन आप प्लास्टिक के फूलों को फूल समझ रहे हों तो बड़ी गड़बड़ है। प्लास्टिक के फूलों के मैं विरोध में हूं।

इसलिए विरोध में हूं कि वह नकली सिक्के, खोटे सिक्के असली सिक्कों को बाहर कर देते हैं बाजार के। झूठे फूल... असली फूलों की हत्या हो जाती है। झूठा आचरण सच्चे आचरण के जन्म में बाधा बन जाता है। और जब हम इस तरह उत्सुक हो जाते हैं, फूल-पत्तों को सम्हालने में और जड़ों को भूल जाते हैं तो सारी गड़बड़ हो जाती है। इस जीवन में यही गड़बड़ हो गई है।

एक छोटी सी घटना आपको कहूं।

माओत्से तुंग छोटा था। उसकी मां की एक बहुत खूबसूरत बगिया थी। उस इलाके में उसकी मां से ज्यादा अच्छे फूल किसी की बगिया में नहीं आते थे। बड़े प्रेम से उसने उन फूलों को सींचा था, और बड़े प्रेम से उनको सम्हाला था। प्रेम पुरस्कार लाता था, और फूल बड़े अदभुत होते थे। फिर वह बूढ़ी मां बीमार पड़ गई। तो उसे अपनी बीमारी की चिंता न थी, न अपनी मौत की। फिकर थी उसे अपने फूलों की, जो कुम्हला न जाएं। अपने पौधों की, जो मुरझा न जाएं। माओ छोटा था, उसने कहाः मां तुम घबड़ाओ मत, मैं उनकी फिकर कर लूंगा।

पंद्रह दिन तक उसकी मां बीमार थी और माओ बगीचे में मेहनत करता रहा। रात सोया नहीं। रात-दिन मेहनत करता रहा। लेकिन कोई भी मेहनत कारगर न हुई। फूल सूखते गए, पौधे कुम्हलाते गए। घबड़ाया कि बात क्या थी? पंद्रह दिन बाद मां जब थोड़ी ठीक हुई, वह बाहर आई। तो वह रोने लगी, माओ भी रोने लगा। माओ ने कहाः मैंने पूरी मेहनत की, लेकिन न मालूम क्या हुआ? ये फूल तो सूख गए हैं, और पौधे कुम्हला गए हैं। उसकी मां ने कहाः तुम तो दिन-रात बगीचे में रहते थे, करते क्या थे? उसने कहाः मैं एक-एक पत्ते की धूल झाड़ता था। एक-एक फूल पर पानी छिड़कता था। पता नहीं क्या हुआ, ये सब सूखते चले गए? उसकी मां हंसने लगी। उसने कहाः पागल हो तुम, फूलों में और पत्तों में थोड़े ही प्राण होते हैं; प्राण तो होते हैं जड़ों में, जो दिखाई नहीं पड़तीं।

उसने जड़ों को पानी ही नहीं दिया। वह फूल-पत्तों को सम्हालता रहा। उनकोझाड़ता रहा, उनकी धूल निकालता रहा। उन पर थोड़ा-थोड़ा पानी छिड़कता रहा। छोटा बच्चा था, जड़ें उसको दिखाई नहीं पड़ीं। जड़ों का उसने कोई खयाल नहीं किया। जो दिखाई नहीं पड़ता, उसका खयाल भी कौन करता है? जो दिखाई पड़ता है, उसी का हम खयाल करते हैं। उसे पता भी न था कि जमीन के नीचे जड़ें हैं जिनमें प्राण हैं। और अगर उनको पानी मिल जाए तो फूल-पत्तों को अपने आप मिल जाएगा। लेकिन फूल-पत्तों को पानी देने से जड़ों को पानी नहीं मिल सकता है।

वह तो बच्चा था, लेकिन हम सब भी जिंदगी के बगीचे में ऐसे ही बच्चे हैं। फूल-पत्तों को सम्हालते हैं, जड़ों की हमें कोई फिकर नहीं। बल्कि हम पूछते हैं जो चीज दिखाई नहीं पड़ती, वह है कहां? मनुष्य के भीतर जो चेतना है, वह उसकी जड़ है। वहां हैं रूट्स। मनुष्य की जो आत्मा है, वह उसकी जड़ है। वह दिखाई नहीं पड़ती।

जड़ें कभी दिखाई नहीं पड़तीं। अदृश्य उनका काम है। वहां जो सम्हाल लेता है, उसके बाहर के जीवन में बहुत फूल आते हैं। बहुत सौंदर्य प्रकट होता है। बहुत सत्य, बहुत संगीत का जन्म होता है। लेकिन भीतर जो जड़ों को भूल जाता है और बाहर के फूल-पत्तों को सम्हालने में लग जाता है, उसका जीवन मुरझा जाता है।

हम सबका जीवन ऐसे ही मुरझा गया है। इस मुरझाएपन को छिपाने के लिए हम फिर बाजार से फूल खरीद लाते हैं, पत्ते लगा लेते हैं। असली पौधा मर ही जाता है। धीरे-धीरे नकली पत्ते ही, और फूल ही हमारे पास रह जाते हैं। फिर नकली जीवन में आनंद कैसे हो? फिर नकली और झूठे जीवन में सुवास कैसे हो? फिर नकली और झूठे जीवन में वह पुलक, थिरक और नृत्य कैसे हो?

वह नहीं हो सकता। वहां प्राण ही नहीं हैं तो यह सब कैसे होगा? इसलिए मैंने कहाः भीतर के सौंदर्य को जगाना। भीतर की कुरूपता को छिपाना मत। उसे मिटाना है, इसलिए छिपाना मत। अगर बचाना हो, तो छिपा लेना। जिसे हम छिपाते हैं वह बच जाता है, जिसे हम उघाड़ते हैं उसके मिटने की शुरुआत हो जाती है।

मैं समझता हूं मेरी बात खयाल में आई होगी। एक छोटा सा प्रश्न और, और फिर चर्चा मैं पूरी करूंगा।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि माताएं, पत्नी, बहन इत्यादि अपने प्रिय व्यक्ति को युद्ध में भेजती हैं, इसलिए उनका प्रेम झूठा है? परंतु मेरी समझ से वह त्याग है। और उनका देश-प्रेम, व्यक्ति-प्रेम से बढ़ कर है। क्या यह सच है?

प्रेम सिर्फ प्रेम होता है। न तो वह व्यक्ति का होता है, न देश का। न मनुष्यता का, न परमात्मा का। जिस हृदय में प्रेम है, वह प्रेम किसी तरह की हिंसा और घृणा बरदाश्त नहीं कर सकता। लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं। हम कहते हैंः हम मनुष्यता को प्रेम करते हैं, और मनुष्यों की हत्या किए चले जाते हैं। बड़े आश्चर्य की बात है! मनुष्यों को छोड़ कर मनुष्यता कहीं है? कहीं खोजने जाइएगाः ह्यूमैनिटी कहीं मिलेगी, मनुष्यता कहीं मिलेगी?

जहां भी मिलेगाः मनुष्य मिलेगा, मनुष्यता कहीं भी नहीं मिलेगी। और हम कहते हैं कि हम मनुष्यता को इतना प्रेम करते हैं कि अगर जरूरत पड़े तो हम मनुष्यों की हत्या कर सकते हैं! बड़ी होशियारी की, बड़ी कनिंगनेस की, बड़ी चालाकी की बात है।

जिस आदमी के हृदय में प्रेम है उसका कोई देश हो सकता है? उसका कोई देश नहीं हो सकता, क्योंकि प्रेम की कोई सीमा नहीं है। जिस आदमी के हृदय में प्रेम है, सारे देश उसके अपने हैं। वह यह नहीं कह सकता है कि हिंदुस्तान मेरा, और पाकिस्तान मेरा नहीं। उसका प्रेम कोई सीमा नहीं मानेगा। देश-प्रेम के नाम पर हम सारी दुनिया के प्रति हमारी जो घृणा है, उसे छिपाने का उपाय करते हैं। जमीन एक है। सारी रेखाएं मनुष्य के बीच पैदा होने वाले कुछ शरारती लोगों की करतूतें हैं। जमीन कहीं भी कटी हुई नहीं है, कहीं भी बटी हुई नहीं है।

जमीन पर कोई देश का बंटवारा धार्मिक नहीं है, राजनैतिक है। प्रेम का बंटवारा नहीं है यह, यह घृणा का और हिंसा का बंटवारा है। और फिर इन सीमाओं पर युद्ध खड़े होते हैं। और हम कहते हैंः हम अपने देश-प्रेम के लिए इन सीमाओं पर अपने लोगों की हत्याएं करवाएंगे, और दूसरों की हत्या करेंगे। और वह दूसरी कौम के राजनीतिज्ञ भी यही समझाते हैं कि तुम भी अपने देश-प्रेम के लिए मरो, और मारो।

और देश-प्रेम के नाम पर दुनिया में अब तक पांच हजार वर्षों में चौदह हजार युद्ध हुए हैं। हर वर्ष तीन युद्ध। चौदह हजार युद्ध पांच हजार वर्षों में देश-प्रेम के नाम पर! और आदमी कटता है, और मरता है। लेकिन हम बहुत होशियार हैं। जब भी हमें कोई बुरा काम करना होता है तो हम कोई ऊंचा नारा खोज लेते हैंः देश-प्रेम! मनुष्यता का प्रेम! धर्म का प्रेम! निहायत बेवकूफियों को हम अच्छे-अच्छे शब्दों में छिपा लेते हैं।

जिस मनुष्य के हृदय में प्रेम है वह किसी भी मूल्य पर हिंसा के लिए राजी नहीं हो सकता है। वह किसी भी मूल्य पर हिंसा के लिए तैयार नहीं हो सकता है। और जो चीजें हिंसा लाती हैं, उन चीजों के लिए भी राजी नहीं हो सकता। देश की सीमाएं हिंसा लाने वाली सीमाएं हैं। जिस आदमी के हृदय में प्रेम है वह इस बात के पक्ष में होगा कि दुनिया में राष्ट्र नहीं रह जाने चाहिए। वह इस बात के पक्ष में नहीं हो सकता कि राष्ट्र बचने चाहिए। वह इस बात के पक्ष में नहीं हो सकता कि क्षुद्र और ब्राह्मण, और क्षत्रिय और वैश्य बचने चाहिए। वह इस पक्ष में नहीं हो सकता है कि हिंदू-मुसलमान बचने चाहिए। वह इस पक्ष में होगा कि ये सारी सीमाएं युद्ध लाती हैं, हिंसा लाती हैं। इसलिए दुनिया में कोई भी सीमा नहीं बचनी चाहिए।

यह सारी देश-प्रेम की बातें हिटलर भी करता है, मुसोलिनी भी करता है, स्टैलिन भी करता है, माओ भी करता है--सारी दुनिया में सब करते हैं। और अंत में परिणाम क्या होता है इस देश-प्रेम का? युद्ध, हत्या और हिंसा! हम कब समझेंगे इस बात को कि देश-प्रेम के शब्द झूठे हैं।

मनुष्य के भीतर अगर प्रेम होता--जो कि नहीं है, लेकिन पैदा हो सकता है। और वह तभी पैदा होगा जब हम इस बात को ठीक से समझ लें कि जिसे हम अभी प्रेम समझ रहे हैं, वह प्रेम नहीं है। अभी हिंदुस्तान पर हमला हुआ, पाकिस्तान का या चीन का हमला हुआ। सारे हिंदुस्तान में लोग कहते हैंः प्रेम की लहर दौड़ गई, लोग इकट्ठे हो गए। लोग संगठित हो गए, एकता आ गई।

मैं आपसे पूछता हूंः यह प्रेम की एकता है, या कि घृणा की एकता है? सामने दुश्मन खड़ा है, उसे नष्ट करने की कामना तीव्रता से पैदा होती है। उससे जूझने की, हत्या की, हिंसा की तीव्र लहर दौड़ती है। हम इकट्ठे हो जाते हैं। वह इकट्ठा होना प्रेम का इकट्ठा होना नहीं है।

आज तक दुनिया में प्रेम का कोई संगठन नहीं बना। सब संगठन घृणा के हैं, हेट के हैं। फिर वह घृणा हट जाती है, युद्ध हट जाता है। हम फिर अपनी जगह खड़े हो जाते हैं। वह सारी एकता विलीन हो जाती है। फिर महाष्ट्रियन गुजराती से लड़ने लगता है, फिर हिंदू मुसलमान से लड़ने लगता है, फिर दक्षिण भारतीय उत्तर भारतीय से लड़ने लगता हैं। हिंदी बोलने वाला गैर हिंदी बोलने वाले से लड़ने लगता है।

हमारे भीतर प्रेम नहीं है--इस सत्य को मनुष्यता जिस दिन स्वीकार कर लेगी कि अभी हम प्रेम को जन्म नहीं दे पाए हैं, उस दिन मनुष्य के जीवन में एक सौभाग्य का उदय होगा। क्योंकि तब हम सोच सकेंगे कि कैसे प्रेम को जन्म दें? और जब तक हम इस इलूजन में, इस भ्रम में रहेंगे कि प्रेम हमारे भीतर है, तब तक तो फिर प्रेम को जन्म देने का विज्ञान भी सोचा-विचारा नहीं जा सकता है।

कुछ और बहुत प्रश्न हैं, वह मैं कल सुबह आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

पांचवां प्रवचन

जीवन में अहंकार का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।

एक वृद्ध लेकिन कुंआरी महिला ने अकेलेपन से घबड़ा कर, एकाकीपन से ऊब कर एक तोते को खरीद लिया था। तोता बहुत बातूनी था। बहुत चतुर और बुद्धिमान था। उसे शास्त्रों के सुंदर-सुंदर श्लोक याद थे, सुभाषित कंठस्थ थे। भजन वह तोता कह पाता था। वह वृद्धा उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसके अकेलेपन में एक साथी मिल गया। लेकिन थोड़े दिनों ही बाद उस तोते में एक खराबी भी दिखाई पड़ी। जब घर में कोई भी न होता था और उसकी मालकिन अकेली होती, तब तो वह भजन और कीर्तन करता, सुभाषित बोलता, सुमधुर वाणी और शब्दों का प्रयोग करता। लेकिन जब घर में कोई मेहमान आ जाते, तो वह तोता एकदम बदल जाता था। वह फिल्मी गाने गाने लगता और सीटियां बजाने लगता। और कभी-कभी अश्लील गालियां भी बकने लगता। वह महिला बहुत घबड़ाई। लेकिन उस तोते से उसे प्रेम भी हो गया था। और अकेले में वह उसका बड़ा साथी था। लेकिन जब भी घर में कोई आता तो वह कुछ ऐसी अभद्र बातें करता कि वह महिला बड़ी संकोच और परेशानी में पड़ जाती।

वह तोता ही तो था। आदमी होता तो ऐसा कभी न करता। आदमी इससे उलटा करता है। अकेले में फिल्मी गाने गाता है, सबके सामने भजन कहता है। वह तोता ही तो था आखिर। वह कोई बहुत समझदार नहीं था। वह पागल अकेले में तो भजन गाता, और सबके सामने फिल्मी गाने गाता, और सीटियां बजाता, और अश्लील शब्द बोलता। वह महिला घबड़ाई! क्या करे? तो उसने अपने चर्च के पादरी को कहा।

क्योंकि चर्च के पादरी का धंधा यही थाः लोगों को सुधारना, उनके जीवन को अच्छा बनाना, उनके आचरण को शुद्ध करना। तो उस महिला ने सोचा कि जो हजारों लोगों के जीवन को शुद्ध करता है, क्या एक तोते के जीवन को नहीं बदल सकेगा?

उसने जाकर चर्च के पादरी को प्रार्थना कीः मेरे तोते में एक खराब आदत है, क्या आप इसे नहीं बदल सकेंगे? चर्च के पादरी को तोतों के संबंध में कोई भी ज्ञान नहीं था। लेकिन उपदेशक कभी भी अपना अज्ञान स्वीकार करने को राजी नहीं होते। वह भी राजी नहीं हुआ। और उसने कहाः हां, इसमें कौन कठिनाई है, मैंने तो सैकड़ों तोतों को ठीक किया है। यद्यपि यह पहले ही तोते से उसका पाला था। रात भर वह सोचता रहाः क्या करे, क्या न करे? और तभी उसे खयाल आया, उसके पास खुद भी एक तोता है।

और वह तोता चूंकि चर्च के पादरी के पास था, इसलिए चर्च का पादरी जितने उपदेश देता था, उतने ही उपदेश उसे भी याद हो गए थे। और निरंतर चर्च में कीर्तन और भजन चलता, और अच्छी बातें चलतीं, तो उस तोते ने उनको भी याद कर लिया था। वह तोता बहुत धार्मिक था। पादरी ने सोचाः मैं तो नहीं समझा पाऊंगा उस बिगड़े हुए तोते को, लेकिन क्या यह अच्छा न होगा कि मैं अपने तोते को कुछ दिनों के लिए उस तोते के पास छोड़ दूं। यह धार्मिक तोता है, उस अधार्मिक को ठीक कर लेगा।

और वह अपने तोते को लेकर दूसरे दिन उस महिला के घर गया। और उसने कहाः एक मादा तोता मेरे पास भी है, और यह बहुत धार्मिक है। और निरंतर धर्म की चर्चा के अतिरिक्त इसे किसी बात में कोई रुचि नहीं।

इसकी प्रार्थनाएं तो इतनी हृदय से भरी होती हैं कि सुनने वाले के आंसू आ जाएं। इसके प्राणपण निरंतर प्रार्थना में जुटे रहते हैं। तो मैं इस अपने मादा तोते को तुम्हारे तोते के पास छोड़े जाता हूं। यह सप्ताह, दो सप्ताह में ही उसका हृदय परिवर्तन कर देगा।

वह अपने मादा तोते को उसके पास छोड़ गया। एक ही पिंजरे में उन दोनों को बंद कर दिया गया। बिगड़ा हुआ तोता बह्ुत... थोड़ी देर तक तो स्तब्ध होकर इस नये अजनबी को देखता रहा। फिर उसने दोस्ती के लिए हाथ बढ़ाया, थोड़ी बातचीत हुई। उन दोनों में मित्रता हो गई। और जैसा स्वाभाविक था, मित्रता के बाद उसने प्रेम के लिए भी आमंत्रण दिया। और मादा तोते के आस-पास उसने प्रेम का जाल रचा। लेकिन वह मन में डरा हुआ था, क्योंकि मादा तोता धार्मिक थी।

धार्मिक लोग प्रेम से बहुत डरते हैं। वह तोता भी डरा हुआ था कि पता नहीं प्रेम के संबंध में यह आमंत्रण स्वीकार भी होगा या नहीं? लेकिन प्रयास करना जरूरी था। उसने कोशिश की, वह नाचा-कूदा, उसने गीत गाए। और अंत में इस वजह से उसने पूछा कि कहीं मेरी ये सारी हरकतें उसे नाराज तो नहीं कर रही हैं? उसने उस मादा तोते को पूछाः मेरे गीत और मेरे प्रेम का आमंत्रण तुम्हें नाराज तो नहीं कर रहा हैं? क्योंकि मैंने सुना है तुम तो दिन-रात प्रार्थनाओं में लीन रहने वाली हो। उस मादा तोते ने कहाः तुम पागल हो, मैं प्रार्थनाएं करती ही किसलिए थी?

उस मादा तोते ने कहाः मैं प्रार्थनाएं करती ही किसलिए थी, तुम्हें पाने को। दूसरे दिन से उस मादा तोते ने प्रार्थनाएं करनी बंद कर दी। और उस बिगड़े हुए तोते ने गालियां देनी बंद कर दी। वह भी किसी पत्नी की तलाश में था, और इसलिए क्रोध में गालियां दे रहा था। और वह मादा तोता किसी पति की तलाश में थी, और इसलिए प्रार्थनाएं कर रही थी। वे प्रार्थनाएं और गालियां एक ही अर्थ रखती थीं, उनमें कोई भेद नहीं था।

यह एक घटना मैं इसलिए कहना चाहता हूं कि यदि आदमी का अंतःकरण न बदले तो उसकी गालियों और प्रार्थनाओं में कोई भेद नहीं होता है। उसके मंदिर जाने में, उसके शिवालय जाने में और उसके मधुशाला जाने में कोई भेद नहीं होता है। मनुष्य का हृदय न बदले तो वह चाहे कुछ भी करे, उसके करने के पीछे वे ही क्षुद्र आकांक्षाएं, इच्छाएं और वासनाएं काम करती हैं। ऊपर स्वरूप बदल जाता है। ऊपर से ढंग बदल जाता है, और वस्त्र बदल जाते हैं। लेकिन भीतर, भीतर की बात वही रहती है।

इसलिए मैंने यह बात कही। वे दोनों बातें अलग दिखाई पड़ती हैंः एक तोते का गालियां बकना, और एक तोते का प्रार्थनाएं करना बहुत भिन्न मालूम होता है। लेकिन जो नहीं जानते उन्हीं को यह भिन्न मालूम होगा। जो गहरे देखेंगेः वे पाएंगे, उनके अंतःकरण की आकांक्षा और वासना एक ही है। मनुष्य के ऊपरी आचरण के बदल जाने से कुछ भी नहीं होता; और न ही मनुष्य के शब्द बदल जाने से कुछ होता है; और न ही मनुष्य के वस्त्र और स्थान बदल जाने से कुछ होता है; बदलनी चाहिए मनुष्य की अंतर्रात्मा।

लेकिन हम हजारों वर्षों से शब्दों के बदलने में, कृत्य के बदलने में, वस्त्र के बदलने में इतने संलग्न रहे हैं कि हम यह बात ही भूल गए हैं कि ये चीजें बदलने से कुछ बदलाहट नहीं होती। कोई क्रांति नहीं होती। और हम इतने भटक गए हैं इस बदलाहट, बदलाहट के सिलसिले में कि आज हमें खयाल ही नहीं आता कि वस्त्रों, शब्दों और कृत्यों के अतिरिक्त भी हमारे भीतर क्या कोई बदलने के लिए चीज है? क्या कोई चेतना है? क्या कोई आत्मा है जिसे बदलना है?

इधर तीन दिनों में मैंने इसी संबंध में आपसे बातें की हैं। वस्त्रों में जो अपने को छिपा लेता है वह आत्मवंचक है, सेल्फ-डिसेप्शन है, अपने आप को धोखा दे रहा है। और हम सारे लोग इस बड़ी, इसबड़ी विक्षिप्तता में सम्मिलित हैं। आज की रात अंतर्रात्मा को बदलने के कुछ सूत्रों के संबंध में मुझे आपसे कहना है।

पहली रात मैंने आपसे कहाः जीवन के तथ्यों को, नग्न तथ्यों को जानना जरूरी है। क्योंकि उन्हें जाने बिना जीवन को बदलने का कोई विज्ञान समझ में नहीं आ सकता। दूसरी रात मैंने आपसे कहाः विचार की क्षमता विकसित होनी चाहिए। अंधा आदमी सत्य को नहीं खोज सकता। विचार की आंख, सजग, सचेतन, चिंतन, मनन, होश, जागरूकता चाहिए। ताकि वह खोज सके जीवन के अंधेरे पथ पर अपने मार्ग को और अपनी मंजिल को।

और आज की रात मैं आपसे कहना चाहता हूंः मनुष्य के भीतर जो चेतना है, वह जब तक आमूल परिवर्तित न हो जाए तब तक न तो केवल तथ्यों का जानना कुछ अर्थ रखेगा, बल्कि खतरा भी हो सकता है। अगर केवल तथ्यों को हम जान लें और हमारी चेतना परिवर्तित न हो तो यह भी हो सकता है, हम समझ लें कि इन तथ्यों के ऊपर कोई जीवन नहीं है। पश्चिम ऐसी ही भूल में पड़ गया है।

फ्रायड ने मनुष्य के चित्त के तथ्य खोजे और पाया कि मनुष्य के चित्त में सेक्स, कामवासना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और तब उसने इससे यह परिणाम निकाल लिया कि सेक्स के तल पर ही जीना जीवन का लक्ष्य है। यह भूल हो गई। तथ्य को देखना तो उचित था, लेकिन उसी तथ्य पर रुक जाना खतरनाक है। तथ्य इसलिए देखे जाने चाहिए ताकि हम उनका अतिक्रमण कर सकें, उनके ऊपर उठ सकें। सड़क में गड्ढा इसलिए देखा जाना चाहिए ताकि हम उस गड्ढे के पार हो सकें, न कि इसलिए कि हम उस गड्ढे में गिर जाएं। तो मैंने तथ्यों को देखने की बात कही है। इसलिए नहीं कि उन तथ्यों में हम रुक जाएं, बल्कि इसलिए ताकि देख कर हम उन्हें पार कर सकें।

और वह पार करने की क्षमता विचार से पैदा होगी। लेकिन अकेला विचार भी काफी नहीं है। अकेला विचार भी खतरनाक हो सकता है। अकेला विचार इसलिए खतरनाक हो सकता है कि जो आदमी बस विचार मात्र करता रह जाता है उसके जीवन से सक्रियता विलीन हो जाती है, वह निष्क्रिय हो जाता है। और जीवन में जो भी परिवर्तन हैः वह एक सक्रिय, क्रिएटिव, एक रचनात्मक परिवर्तन है जिसमें श्रम उठाना होता है।

मुझे खयाल आती है एक घटना, पिछले महायुद्ध में एक युवक सेना में भरती हुआ। बहुत सैनिकों की जरूरत थी। तो बहुत जल्दी में बिना बहुत परीक्षा के वह भरती कर लिया गया। किसी को पता भी न था कि वह एक विचारक है। क्योंकि विचारक सैनिक नहीं हो सकता। लेकिन वह भरती हो गया था। और जिस दिन पहले ही उसकी टुकड़ी कवायद करने को खड़ी हुई, और उसके प्रधान ने आज्ञा दीः बाएं घूम जाओ। सारे सैनिक बाएं घूम गए, वह सीधा खड़ा रहा। उसके प्रधान ने कहाः क्या तुमने सुना नहीं? उसने कहाः बिना विचार किए कुछ करने की मेरी आदत नहीं है। मैं थोड़ा सोच लूं कि बाएं घूमना या नहीं घूमना? प्रधान तो हैरान हो गया!

यह पहला ही मौका था कि सिपाही इस तरह की बात कहे। दो-चार दिन में ही यह बात जाहिर हो गई कि वह आदमी कुछ भी करने में असमर्थ है। लेकिन वह भरती हो गया था तो उसे कोई न कोई काम खोजना जरूरी था। तो उसे फिर टुकड़ी से हटा कर सिपाहियों का जो भोजनालय था, उसमें भेज दिया गया। सोचा कि वहां यह कुछ थोड़ा-बहुत काम कर सकेगा।

और पहले ही दिन उसे मटर के दाने बहुत से दिए गए और उससे कहा गयाः बड़े दानों को अलग कर लो, छोटे दानों को अलग कर लो। कोई घंटे भर बाद उसका प्रधान वापस लौटा। उसने देखा कि वह थाली में मटर के दाने वैसे के वैसे रखे हैं। और वह आदमी आंख बंद किए हुए उन्हीं के पास बैठा हुआ है, सिर से हाथ लगाए हुए। उसने उसे हिलाया और कहाः क्या कर रहे हो? उसने कहाः आपने मुझे बड़ी मुसीबत में डाल दिया। आपने कहाः बड़े दाने एक तरफ करो, छोटे दाने दूसरी तरफ। लेकिन कुछ दाने मंझोले हैं, उनको मैं कहां करूं? मैं इतनी उलझन में पड़ गया हूं सोच-विचार की, और जब तक यह तय न हो जाए कि मंझोले दाने कहां जाएं, तब तक काम में हाथ लगाना उचित नहीं है। इसलिए मैं रुका हुआ हूं।

ऐसे विचार के लिए मैंने नहीं कहा है। मेरी बात सुन कर कई बार भूल हो जाती है। ऐसे विचार के लिए मैंने नहीं कहा है। यह विचार तो फिर एक रोग हो गया। यही वजह है कि अब तक दुनिया में जो लोग विचारशील रहे, उन्होंने कुछ भी नहीं किया। और जो बिल्कुल अविचारशील थे, उन्होंने बहुत कुछ किया। ये दोनों खतरनाक बातें हैं। अविचारशील आदमी कुछ करे, खतरा होना निश्चित है। और विचारशील कुछ न करे तो जीवन में कुछ भी विकसित कैसे होगा?

अब तक जो लोग बिल्कुल विचार नहीं करते रहे हैं, वे बहुत सक्रिय रहे हैं। उनकी सक्रियता से दुष्परिणाम आया है। और जो लोग विचारशील रहे हैं, वे निष्क्रिय हो गए हैं। उनकी निष्क्रियता से जीवन विकसित नहीं हुआ। मैं किस विचार की बात किया हूं?

उस विचार की नहीं जो अपने में ही खोकर समाप्त हो जाता है। बल्कि उस विचार की जो कि जीवन के लिए पथ बनता है और मार्ग बनता है। सृजनात्मक चिंतन, क्रिएटिव थिंकिंग होनी चाहिए। विचार तो केवल एक साधन है। और अगर उससे कुछ जीवन में सृजन न होता हो तो व्यर्थ है, फिजूल है, कल्पना से ज्यादा नहीं है।

इन दो तथ्यों के संबंध में मैंने आपसे बातें कीं। लेकिन ये दोनों तथ्य अधूरे हैं। जीवन के तथ्यों को जानना अधूरा है। केवल विचार करना अधूरा है। तीसरी बात पूरी हो तो वे दोनों बातें भी सहयोगी हो जाती हैं, अन्यथा बाधा बन जाती हैं। और वह तीसरी बात मुझे आज आपसे कहनी है। वह हैः अंतर्रात्मा के आमूल परिवर्तन के सूत्र। अंतर्रात्मा के आमूल परिवर्तन के कौन से सूत्र हैं?

पहला सूत्र, पहली बातः मनुष्य अपनी अंतर्रात्मा से परिचित नहीं है।

जिससे हम परिचित नहीं हैं उसे हम बदलेंगे कैसे? अंतर्रात्मा से परिचित कैसे हों? हैरानी होगी यह बात जान कर कि एक बड़ा सरल सूत्र है जो अंतर्रात्मा से परिचय में ले जाता है। जिससे व्यक्ति स्वयं को जान पाता है, पहचान पाता है, देख पाता है, खुद का दर्शन कर पाता है। और वह सूत्र हैः मौन।

हम निरंतर अपने भीतर इतने ज्यादा व्यस्त हैं, इतने ज्यादा आक्युपाइड हैं, इतने ज्यादा उलझे हुए हैं, अपने भीतर निरंतर इतने काम में लगे हुए हैं कि उस उलझेपन के कारण, उस काम के कारण वह जो हमारे भीतर है उसे देखने का अवकाश हमें नहीं मिल पाता।

अगर एक आदमी के घर में आग लग गई हो और कोई जाकर उससे कहेः तुम्हारे घर में आग लग गई है और वह बाजार से अपने घर की तरफ दौड़े। रास्ते पर मैं उसे मिल जाऊं और उसे नमस्कार करूं। क्या आप सोचते हैंः वह मुझे देख सकेगा और मेरे नमस्कार को सुन सकेगा? नहीं। और कल अगर मैं उससे पूछूं कि मैं राह पर तुम्हें मिला था और मैंने तुम्हें नमस्कार की थी। तुमने मुझे देखा था, नमस्कार का उत्तर तुमने नहीं दिया। वह कहेगाः उस वक्त मैं कुछ भी देखने में समर्थ न था, मन मेरा इतना अशांत और उलझा हुआ था।

भीतर जब मन उलझा हुआ होता है तो उसके देखने की क्षमता कम हो जाती है। वह अपने से बाहर उठ ही नहीं पाता। अपने ही उलझाव में इतना लीन हो जाता है, उस उलझाव के बाहर क्या है उसे दिखाई नहीं पड़ता। हम सब बहुत उलझे हुए हैं। हम सब इतने ज्यादा व्यस्त हैं कि एक क्षण को भी चित्त के तल पर कोई विराम नहीं, कोई मौन नहीं, कोई विश्राम नहीं--फिर कैसे हो स्वयं का साक्षात?

स्वयं को देखने के लिए विश्राम करता हुआ चित्त चाहिए। और विश्राम चित्त करता हैमौन, जब चुप हो जाता है तब। हम तो कभी चुप नहीं होते। दिन भर किसी और से बात करते हैं, या फिर अपने भीतर बात करते हैं, या फिर रात आ जाती है तो सपने में बात करते हैं। और यह बात करना चलता रहता है। हाथ-पैर थक जाते हैं, रात सो जाते हैं। लेकिन केवल शरीर ही सोता है, मन काम करता रहता है। शरीर विश्राम कर लेता है, लेकिन मन विश्राम नहीं कर पाता। और मन धीरे-धीरे इतना व्यस्त, इतना उलझा हुआ हो जाता है कि फिर उस उलझाव के बाहर क्या है, उसे देखने की उसकी कोई क्षमता, कोई शक्ति नहीं रह जाती।

पहला सूत्र है इसलिए आत्म-परिवर्तन की दिशा मेंः मौन।

मौन की तरफ आंखें उठानीं, मौन की तरफ थोड़े से कदम उठाने... कैसे उठाएंगे मौन की तरफ थोड़े से कदम? अगर ध्यान में बात आ जाए तो बड़ी आसान है। इससे ज्यादा आसान और कोई बात नहीं है। चौबीस घंटे की दौड़ में थोड़े से क्षण, थोड़ी सी घड़ी इस बात के लिए खोजी जा सकती है। एक छोटा सा कोना इस बात के लिए खोजा जा सकता है जहां मैं अपने मन को सब भांति शांति में और मौन में छोड़ दूं। जहां उसे साइलेंट हो जाने का एक अवसर और मौका दे दूं।

और मैं आपसे कहता हूंः मन शांत होना चाहता है, मन की पूरी आकांक्षा मौन में जाने की है। लेकिन आप उसे छोड़ते ही नहीं, दौड़ाए चले जाते हैं। दौड़ाए चले जाते हैं। आप कभी मौका नहीं देते कि उसे छोड़ दें और वह शांत हो जाए। कौन दौड़ना चाहता है, दुनिया में कोई दौड़ना चाहता है? कौन भागना चाहता है, कोई भागना चाहता है? मन भी नहीं दौड़ना चाहता है, और न भागना चाहता है। लेकिन हम मौका नहीं देते कि वह रुक जाए, ठहर जाए।

एक दफा काशी से एक कुत्ते ने दिल्ली की यात्रा की थी। दिल्ली की सभी लोग यात्रा करते हैं। उस कुत्ते को भी यह खयाल आ गया कि मैं दिल्ली जाऊं। वह सबसे पहला ही कुत्ता रहा होगा। अब तो मुल्क भर के कुत्तों को खयाल आता है कि वे दिल्ली जाएं। उसने काशी से दिल्ली की यात्रा की। कुत्तों के भूगोल में बुजुर्गों से उसने जो सुना था, वह यह था कि काशी से दिल्ली जाते-जाते कम से कम एक महीना लग जाएगा। लेकिन वह सात दिन में ही दिल्ली पहुंच गया। दिल्ली के कुत्ते भी हैरान हुए!

और उन्होंने उस कुत्ते को पूछाः आश्चर्य है, बड़ा आश्चर्य है! महीने भर की यात्रा तुमने सात दिनों में पूरी कर ली! वह कुत्ता बोलाः मेरा तो मन होता था कि दो महीने और तीन महीने में करूं, लेकिन बीच में जो गांव पड़े उनके कुत्तों ने मुझे ठहरने नहीं दिया। एक गांव के कुत्ते मेरा पीछा छोड़ते थे तो दूसरे गांव के मेरे पीछे पड़ जाते थे। मुझे एक क्षण रुकने का मौका नहीं मिला। लेकिन आपको पता है, यात्रा तो सात दिन में पूरी हो गई। लेकिन इतनी बात कहते-कहते ही वह कुत्ता मर गया। दिल्ली के कुत्तों ने मिल कर उसकी कब्र बना दी है, और उस पर पत्थर लगा दिया है, और यह बात लिख दी है। अगर आप दिल्ली जाएं तो खोजने की कोशिश करना, कहीं न कहीं वह कब्र मिल जाएगी।

हम भी अपने मन के पीछे इसी भांति पड़े हुए हैं, जैसे उस काशी के कुत्ते के पीछे हर गांव के कुत्ते पड़ गए थे। उसे ठहरने का हम कोई मौका ही नहीं देते। हम कोई अवसर नहीं देते। हम कोई कोना नहीं देते कि वह ठहर

जाए, रुक जाए, विश्राम कर ले। और तब, तब मन अगर थक जाता हो, टूट जाता हो, और तब उसी दिन रुक पाता हो जिस दिन कि मौत आ जाए तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। और इस बात को छिपाने के लिए कि हम मन को मौका नहीं देते हैं ठहरने का--हमने अजीब-अजीब सिद्धांत गढ़ लिए हैं। हमने यह गढ़ लिया है कि मन तो बहुत चंचल है, वह ठहरता ही नहीं। झूठी है यह बात। सरासर झूठी है यह बात।

मन तो बिल्कुल अभी ठहर जाए। आपने उसे ठहराने का मौका और अवसर नहीं दिया। आप अवसर तो देते हैं दौड़ाने का। और सोचते हैं ठहराने की बात, तब फिर आपके गणित में भूल है। मैं आपसे निवेदन करता हूंः मन तो अभी इसी क्षण ठहर सकता है। मन तो आकुल होता है ठहरने को। लेकिन आप, आप उसे दौड़ाए चले जाते हैं। आप उसके लिए कोई मौका नहीं जुटाते। दौड़ने का मौका तो जुटाते हैं, लेकिन ठहरने का मौका नहीं जुटाते। क्या कभी आपने सोचा है इस संबंध में?

मुझे आश्चर्य होता है कि शायद ही आपने कभी सोचा हो कि मैंने कोई मौका जुटाया है मन को ठहराने का, रुक जाने का। और जो आप करते हैं ठहराने की कोशिश, वह भी दौड़ाने की ही कोशिश है। कोई आदमी जाकर मंदिर में भगवान का नाम जपने लगता है। यह कोई ठहराने की कोशिश है! पागल है वह आदमी। क्योंकि भगवान का नाम जपना खुद एक तरह की दौड़ है। मन को फिर एक काम मिल गया। अब वह राम-राम जप रहा है, ओम-ओम जप रहा है, अल्लाह-अल्लाह जप रहा है, लेकिन काम फिर दे दिया आपने। आप काम देने से नहीं चूके। माला पकड़ा दी, अब वह माला की गुरिए फेर रहा है।

यह तो काम बदलना हुआ, काम बंद करना न हुआ। सब्स्टीट्यूट आपने फिर खोज लिया। मन फिल्मी गाने गा रहा था, आपने भजन पकड़ा दिया। अब वह भजन कह रहा है। आप समझ रहे हैं कोई फर्क हो गया है। मन का काम जारी है, विश्राम उसे नहीं मिला। मैं आपसे कहता हूंः फिल्मी गाने में मन पर जितना श्रम पड़ता है, भजन में उससे कम नहीं पड़ता। भजन भी एक आकुपेशन है, वह भी एक काम है। वह भी एक व्यस्तता है। मन उसमें भी खिंचता और तनता है और संलग्न होता है।

क्या मैं गांव की मधुशाला की तरफ दौड़ा हुआ जाऊं तो मेरे पैरों को दूसरी तरह का श्रम पड़ेगा? और मैं गांव के मंदिर की तरफ दौड़ा हुआ जाऊं तो दूसरा श्रम पड़ेगा? मेरे पैर दोनों हालत में चलेंगे और थकेंगे। इससे फर्क नहीं पड़ता कि मैं कहां दौड़ रहा हूं? मैं दौड़ रहा हूं, यह सवाल है। मन किसलिए दौड़ रहा है, यह सवाल नहीं है। मन दौड़ रहा है, यह सवाल है। तो जो लोग कोशिश भी करते हुए मालूम पड़ते हैं, वे भी मन को मौका नहीं देते रुक जाने का। वे भी दौड़ने की नई तरकीब खोज लेते हैं।

और मन दौड़ने से इतना ऊबा हुआ है कि वह नई दौड़ की बजाय अगर पुरानी दौड़ पसंद करता हो तो इसमें भी कोई हैरानी की बात नहीं है। पुरानी दौड़ का वह अभ्यासी होता है, अभ्यस्त होता है। वह दौड़ उसे परिचित लगती है, वह रास्ता जाना-माना लगता है। उस पर जाने में उसे आसानी होती है। आप नई दौड़ दौड़ाना चाहते हैं, उसको परेशानी होती है। थोड़े दिन कोशिश करते जाइए, वह नई दौड़ भी दौड़ने लगेगा। लेकिन इससे वह मौन नहीं होगा, शांत नहीं होगा।

मन को मौका देना जरूरी है। बिल्कुल सब तरह के काम से रिक्त होने का मौका देना जरूरी है। वैसी रिक्तता को ही मैं ध्यान कहता हूं। उसको ही मौन कहता हूं। वही साइलेंस है। जहां मन कुछ भी नहीं कर रहा है। क्या करें? फिर भी आप यही पूछेंगे कि ऐसी स्थिति लाने के लिए क्या करें? क्योंकि हमारी भाषा इसको भी एक तरह का करना ही समझेगी।

जापान में एक बहुत बड़ा फकीर था। उसकी एक बहुत बड़ी मोनेस्ट्री थी, बड़ा आश्रम था। कोई पांच सौ भिक्षु उस आश्रम में थे। दूर जंगल के दूर-दूर घेरे तक उसके आश्रम का फैलाव था। एक बहुत बड़ा विशाल भवन था। छोटी-छोटी कोठड़ियां थीं जो दूर पहाड़ियों में फैली हुई थीं। जापान का सम्राट उसके आश्रम को देखने गया। उस फकीर ने मीलों का चक्कर लगवाया उस सम्राट को। एक-एक कोठड़ी के बाबत समझाया कि यहां क्या होता है, यहां कौन रहता है? यह भोजनालय है, यह स्नानगृह है, यह यह है, यह यह है, पुस्तकालय है। सारी पहाड़ी पर घूम कर उसने बताया। लेकिन बीच में बार-बार सम्राट पूछता थाः यह तो मैं समझ गया, लेकिन बीच में यह जो बड़ा भवन बना है...

वही भवन सबसे विशालकाय था। बाकी तो सब छोटी-छोटी झोपड़ियां थी। वहीं भवन उत्तुंग था। दूर से उसका शिखर दिखाई पड़ता था। उसी को देखने वह सम्राट आया था और इस फकीर की बातचीत से हैरान था! वह बार-बार पूछता थाः समझ गया मैं कि यहां फकीर स्नान करते हैं, इसको मुझे क्या समझाना है? यह बीच के भवन में क्या होता है? लेकिन फकीर बीच के भवन की बात जैसे सुनता ही नहीं था। आखिर पूरा आश्रम भी घूम लिया गया और सम्राट की विदाई का क्षण भी आ गया। लेकिन वह बड़े भवन की उसने कोई बात न कही।

दरवाजे पर उस सम्राट ने कहा कि या तो मैं पागल हूं या तुम पागल हो। मैं जिस भवन को देखने आया था उसको बिना देखे वापस लौट रहा हूं। और तुम जैसा आदमी मैंने कभी देखा नहीं। मैंने तीन-चार बार तुम्हें याद दिलाई कि इस भवन में क्या होता है? तुम जैसे बहरे हो जाते हो उस भवन की बात उठते ही। कुछ बोलते नहीं हो और न मालूम कहां-कहां की फिजूल झोपड़ियां मुझे घुमाईं और दिखाईं जिनसे कोई मतलब न था।

उस फकीर ने कहाः क्षमा करें, कुछ कठिनाई है इसलिए। उस भवन में हम कुछ भी नहीं करते हैं। वहां जाकर न करने की स्थिति में बैठ जाते हैं। तो मैं... आप पूछते हैं, वहां क्या करते हो? अब मैं क्या बताऊं कि क्या करते हैं? बाकी सब जगह तो हम कुछ करते हैं। कहीं खाना खाते हैं, कहीं स्नान करते हैं, कोई न कोई एक्शन वहां होता है। लेकिन वह जो भवन है, वह हमारे ध्यान का भवन है, वहां हम कुछ भी नहीं करते। जब किसी को कुछ भी नहीं करना होता है तो उस भवन में चला जाता है। और आप पूछते हैं, वहां क्या करते हो? अगर मैं कहूं कि ध्यान करते हैं तो गलती हो जाएगी। क्योंकि करने का खयाल गलत है, वहां हम कुछ करते नहीं। असल में जब हम कुछ भी नहीं करते, उसी अवस्था का नाम ध्यान है। वही हम वहां करते हैं।

मौन या ध्यान का अर्थ हैः थोड़े क्षणों के लिए कुछ भी न करने की अवस्था में छूट जाना। लेकिन आप कहेंगेः मान भी लें कि हम एक कोने में अंधेरे कोने में बैठ जाएं, आंखें बंद कर लें, शरीर को निश्चेष्ट छोड़ दें तो भी मन तो अपना काम किए ही चला जाएगा। उसे हम कैसे रोकेंगे?

रोकने की भूल मत करना। रोकने की भूल की तो वह कभी भी नहीं रुकेगा। क्योंकि रोकना एक काम है। रोकना एक एफर्ट है, रोकना फिर एक सब्स्टीट्यूट मिल गया। फिर वह एक काम शुरू हो गया कि मुझे रोकना है। रोकने से कभी कोई मन को न रोक पाएगा। बल्कि नियम तो यही है कि जितनी रोकने की आप कोशिश करेंगे, मन उतना ही गतिशील हो जाएगा। क्यों ऐसा हो जाएगा?

अगर इस भवन के द्वार पर हम एक तख्ती लगा दें कि यहां झांकना मना है। फिर यहां से कोई आदमी ऐसा निकल सकता है जो बिना झांके निकल जाए? नहीं, इतना त्यागी और तपस्वी बंबई में खोजना कठिन है जो बिना झांके निकल जाए। और अगर कोई निकल भी गया तो उसकी जिंदगी एक मुश्किल हो जाएगी। लौट-लौट कर मन इसी तख्ती पर अटका रहेगा कि न मालूम वहां क्या था? रात सोएगा तो सपने देखेगा इसी मकान

के सामने खड़े होने के कि झांक के देख लूं कि पता नहीं क्या है? फिर जिंदगी भर एक बेचैनी उसके भीतर सरकती रहेगी कि न मालूम वहां क्या था?

निषेध आकर्षण बन जाता है। इनकार आमंत्रण बन जाता है। जो मन को रोकने की कोशिश करता है वह मन को चलाने का काम शुरु कर देता है। रोकना भी मत। फिर क्या करेंगे आप? आप कुछ भी न करना। और अगर मन चलता हो तो चलने देना। चलने देना, आप कुछ भी मत करना। हम एक साइकिल के चक्के को चला दें, फिर हम हाथ अलग कर लें तो साइकिल का चाक उसी वक्त नहीं रुक जाएगा, मोमेंटम पकड़ लेगा, थोड़ी देर चलता रहेगा। हमारे हाथ अलग कर लेने के बाद भी। उसने गति पकड़ ली है, अब वह उतने चक्कर पूरे लेगा जितनी शक्ति उसको चलने की मिल चुकी है।

तो मन भी आपके छोड़ देने से एकदम से न रुक जाएगा। उसका मोमेंटम है जिंदगी भर का। और जो लोग जानते हैं वे कहते हैंः बहुत सी जिंदगियों की उसमें गति है और शक्ति है बहुत चलाने की--वह आपने भर दी है, वह पूरा चक्कर लेगा। आप घबड़ाएं न, आप उसको चक्कर मारने दें। आप चुपचाप ऐसे बैठ जाएं मन के किनारे पर जैसे कोई नदी के किनारे पर बैठ गया हो। और नदी बही जा रही है और वह बैठा हुआ है। मन चले जा रहा है और वह चुचाप बैठा हुआ है। वह नहीं रोक रहा मन को; न चला रहा, न रोक रहा। मन चल रहा है, वह चुपचाप देख रहा है। वह सिर्फ साक्षी है, वह एक विटनेस है।

जैसे ही आप अपने मन के एक साक्षीमात्र रह जाएंगे, आप थोड़े ही दिनों मे पाएंगेः मन ठहर गया है। मन रुक गया है, उसकी गति बंद है। और जिस क्षण मन की गति बंद है, उसी क्षण आपको मन के भीतर जो छिपा है उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। लेकिन माला फेरने से यह न होगा, और न भगवान का नाम जपने से यह होगा। न कोई मंत्र दोहराने से यह होगा। न मन को रोकने की कोशिश से यह होगा। मन को सब भांति छोड़ देने से और सिर्फ साक्षी रह जाने से यह होगा। आप कहेंगेः साक्षी होना भी तो एक काम हो गया। नहीं, साक्षी होना एक काम नहीं है, साक्षी होना हमारा स्वभाव है।

दिन भर हम जागे रहते हैं, देखते रहते हैं सड़क पर चलते लोगों को, रास्ते के किनारे लगे दरख्तों को, आकाश में उड़ते पक्षियों को, क्या देखने के लिए आप कोई कोशिश करते हैं? रात आप सो जाते हैं तो सपनों को देखते रहते हैं, देखने के लिए कोई कोशिश करते हैं? जब रात सपने भी नहीं होते और नींद इतनी गहरी होती है, तब भी सुबह आप उठ कर कहते हैं कि रात बड़ी गहरी नींद आई। जरूर किसी ने देखा होगा, नहीं तो यह आप कैसे कहते कि रात बड़ी गहरी नींद आई? उस गहरी नींद को भी कोई देखने वाला था। सपने होते हैं, उनको देखने वाला कोई है। सपने नहीं होते हैं तो सुबह आप कहते हैंः आज रात सपने नहीं थे। यह बात भी देखी गई।

जीवन भर आदमी देखता रहता है। देखना, दर्शन या साक्षी होना उसका स्वभाव है, यह कोई काम नहीं, कोई एक्टिविटी नहीं। इसलिए मन के किनारे बैठ कर सिर्फ देखते रह जाएं। एक कोना खोज लें घड़ी दो घड़ी को, आधा घड़ी को। सारी दुनिया को सब समय दे दें, आधी घड़ी अपने लिए बचा लें। और अंत में आप पाएंगेः वह आधी घड़ी ही असली बचाई हुई सिद्ध हुई, बाकी सारी घड़ियां खो गईं।

तेईस घंटे हम जो काम कर रहे हैं जिंदगी में, वह पानी पर खींची हुई लकीरों की भांति सिद्ध होता है अंत में। हम खींच भी नहीं पाते और लकीरें मिट जाती हैं। रेत पर बनाए हुए महलों की भांति सिद्ध होता है, हम बना भी नहीं पाते कि भवन गिर जाते हैं। ताश के महलों की भांति प्रमाणित होता है, एक जरा सा हवा का झोंका और सारे सपने धूल-धूसरित हो जाते हैं। लेकिन थोड़ा सा समय जो आदमी अपने लिए बचा लेता है, और

उसमें मौन हो जाता है, और शांत हो जाता है; उन क्षणों में जो संपदा मिलती है, जो राज्य मिलता है, जो अनुभव मिलते हैं--वे जीवन की स्थायी निधि बन जाते हैं, वहीं है जीवन।

इसलिए पहला सूत्र है अंतर्रात्मा के परिवर्तन काः मौन।

जो चुप नहीं हो सकता वह जीवन को कभी भी नहीं बदल सकता है। गहरी चुप्पी में ही, गहरे मौन में ही, गहरे साइलेंस में ही मनुष्य के भीतर क्रांति की, आत्म-परिवर्तन की क्षमता के दर्शन होते हैं। इतनी विराट शक्ति का अनुभव होता है कि कुछ भी बदला जा सकता है। इतनी बड़ी आग उपलब्ध हो जाती है कि कचरे को जलाया जा सकता है। उसके पहले तो जिंदगी में कोई क्रांति, कोई ट्रांसफार्मेशन नहीं हो सकता है।

इसलिए पहला ध्यान इस तरफ दें। चौबीस घंटे दौड़ते हैं, आधा घंटा न दौड़ें। चौबीस घंटे मन को काम में रखते हैं, आधा घंटा बेकाम छोड़ दें। चौबीस घंटे उलझे हुए हैं, आधा घंटे केवल साक्षी रह जाएं। यह तो पहला सूत्र है। और आज तक जगत में जिन लोगों ने भी कुछ जाना है, इस सूत्र के बिना नहीं जाना है। जो भी सत्य, जो भी सौंदर्य, जो भी श्रेष्ठ अनुभूतियां उपलब्ध हुई हैं, वे मौन में, एकांत में, शांति में, ध्यान में उपलब्ध हुई हैं। तो जिसकी भी आकांक्षा है, जिसके प्राणों में भी प्यास है उसे मौन की दिशा में कदम रखने होंगे। यह पहला सूत्र है।

दूसरा सूत्र भी इतना ही महत्वपूर्ण, इतना ही गहरा और इतना ही जरूरी है। मन के तल पर चाहिए मौन, हृदय के तल पर चाहिए प्रेम। मन तो हो जाए चुप, शून्य और हृदय भर जाए प्रेम से, हो जाए पूर्ण। लेकिन हम प्रेम को भी जीवन में जीते नहीं। प्रेम भी हमारे जीवन में छिपा ही पड़ा रह जाता है, उसे हम कभी विकसित नहीं करते। प्रेम के बीज भी हमारे जीवन में कभी वृक्ष नहीं बन पाते। पता नहीं किस कारण इतनी बड़ी सम्पत्ति को पाकर भी हम दरिद्र रह जाते हैं?

एक ही डर काम करता है जिससे जीवन में प्रेम विकसित नहीं हो पाता, एक ही भूल काम करती है। वह भूल मैं आपको कहूं, तो शायद प्रेम के द्वार खुल सकते हैं। और वह भूल यह हैः उस आदमी के जीवन में प्रेम कभी विकसित न होगा जो हमेशा दूसरों से प्रेम मांगता रहेगा। उसके जीवन में कभी प्रेम विकसित न होगा। जो प्रेम को मांगेगा उसके भीतर प्रेम हमेशा बीज की भांति पड़ा रह जाएगा। प्रेम कभी विकसित न होगा।

और ये भी समझ लें, जिसके भीतर प्रेम विकसित न होगा, वह चाहे दर-दर भीख मांगता फिरे, उसे प्रेम मिल भी नहीं सकता। क्योंकि प्रेम मिलता है प्रेम देने से, मांगने से नहीं। और जितना वह प्रेम को मांगता फिरता है, उतना ही उसके भीतर प्रेम विकसित नहीं हो पाता। क्योंकि प्रेम विकसित होता है देने से। प्रेम दान से विकसित होता है। और अपने भीतर गठरियां बांध कर रख लेने से सड़ जाता है और नष्ट हो जाता है।

हम सब अपने-अपने प्रेम की गठरियां बांधे हुए हैं, तिजोड़ियां बंद किए हुए हैं। शायद हम समझते हों कि जिस भांति रुपयों पर लोहे की तिजोड़ियां लगानी पड़ती हैं, तभी रुपया बचता है। इसी भांति प्रेम पर भी हम तिजोड़ियां बंद किए हुए हैं। हमको पता ही नहीं रुपये का कानून अलग है और प्रेम का कानून अलग है। रुपया बंद करने से सुरक्षित होता है, प्रेम बंद करने से मर जाता है। रुपयों को तिजोड़ी में बंद करने वाला अगर कहीं फूलों को ले जाकर तिजोड़ी में बंद कर दे तो क्या होगा? फूल मर जाएंगे। क्योंकि फूलों का नियम अलग है, रुपयों का नियम अलग है।

हम प्रेम के साथ भी संपत्ति जैसा व्यवहार करते हैं इसलिए प्रेम विकसित नहीं हो पाता। बड़ा मजा यह हैः प्रेम बांटने से विकसित होता है, लुटाने से विकसित होता है। जो जितनी जोर से अपने भीतर से प्रेम उलीचता है, उतना ही उसका हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है, उतना ही भर जाता है। और हम सब बहुत कृपण और कंजूस हैं।

रुपये के संबंध में कोई कंजूस हो तो कोई हर्जा नहीं, लेकिन प्रेम के संबंध में कंजूसी आत्मघात सिद्ध होती है। प्रेम के संबंध में जो कृपण हैं, वे ही अधार्मिक हैं, उसी को मैं इररिलिजीयस कहता हूं। और प्रेम के संबंध में जो मुक्त हस्त, बांटने को उत्सुक है वही धार्मिक है। प्रेम को जो उलीचता रहता है और बांटता रहता है वही धार्मिक है।

एक छोटी सी कहानी कहूं।

एक सुबह एक भिक्षु अपने घर के बाहर निकला। सुबह हो गई थी, लोग उठने लगे होंगे। और आप जानते हैं भिखारी सुबह-सुबह ही भीख मांगने आ जाते हैं। सांझ को कोई भिखारी भीख मांगने नहीं आता। भिखारी भलीभांति जानते हैं, सुबह आदमी का दिल थोड़ा नरम होता है, सांझ कठोर हो जाता है। दिन भर, दिन भर क्रोध, श्रम, कमाना, रुपया, रुपया--सांझ तक हृदय पत्थर हो जाता है। रात थोड़ा सोता है, मौके, बेमौके मन थोड़ा शांत हो जाता है। सुबह भीख मिल सकती है, सांझ भीख नहीं मिल सकती। भिखारी बहुत पहले ही यह तरकीब समझ गए, इसलिए वह सुबह भीख मांगने आते हैं।

वह भी, सुबह हुई थी, अपनी झोली लेकर भीख मांगने निकल पड़ा। और चलते वक्त उसने चावल के थोड़े से दाने अपनी झोली में डाल लिए। क्योंकि भिखारी यह भी समझ गए हैं कि अगर अपनी झोली में थोड़े दाने न पड़े हों तो जिसके द्वार पर भीख मांगने जाओ, बहुत संभावना है कि वह इनकार कर दे। लेकिन चावल पड़े हों झोली में तो इनकार करने की संभावना थोड़ी कम हो जाती है, उस आदमी को लगता है किसी और ने भी दिया है। इससे उसके अहंकार को चोट लगती है, मैं भी दूं। अगर झोली खाली लेकर कोई भिखारी पहुंच जाए तो वह इनकार कर सकता है, पड़ोसी ने भी इनकार किया है, फिर कोई घबड़ाने की बात नहीं।

क्योंकि आदमी इसलिए थोड़े ही देता है कि भिखारी को जरूरत है! आदमी इसलिए देता है ताकि पता चले कि मैं भी देने वाला हूं। तो वह भिखारी अपनी झोली में थोड़े से चावल के दाने... चल पड़ा था। सभी समझदार भिखारी कुछ न कुछ घर से लेकर चलते हैं। इधर भी कोई मौजूद हो और ऐसी भूल करता हो तो कभी न करे। कुछ डाल कर ही चलना अच्छा है।

वह निकला ही था, राजपथ पर पहुंचा ही था, सूरज की पहली किरणें फूटनी शुरू हो गई थीं। एक तरफ सूरज था और दूसरी तरफ उतना ही चमकता हुआ स्वर्ण रथ राजा का दिखाई पड़ा। वह तो आनंद से विभोर होकर नाचने लगा वह भिखारी। राजा के द्वार पर बहुत बार गया था, लेकिन संतरी बाहर से ही लौटा देते थे। राजा तक पहुंचना कभी न हो पाया था। गरीब-गरीब घरों से भिक्षा मिल गई थी, लेकिन राजा के घर से कभी कोई भिक्षा न मिली थी क्योंकि संतरी भीतर ही न जाने देते थे। आज मौका मिल गया, शुभ अवसर, शुभ घड़ी, राजा खुद चला आता है रथ पर। आज तो रथ के सामने खड़ा हो जाऊंगा, सोचा उस भिखारी ने। फैला दूंगा अपनी बाहें, और मांग लूंगा। आखिर राजा ही है, थोड़ा भी देगा तो मेरा तो जन्म-जन्म, मेरे तो बच्चों की पीढ़ियों तक पहुंच जाएगा। अब भिक्षा मांगने की कोई जरूरत न रहेगी।

वह इन सपनों में खोया खड़ा ही था कि रथ आकर रुक गया। और इसके पहले कि वह अपनी झोली फैलाता, राजा का स्वर्ण रथ सूरज की किरणों में चमकता हुआ, राजा का तेजस्वी व्यक्तित्व... राजा नीचे उतर आया। भिक्षु तो हतप्रभ रह गया। भूल गया सब, झोली फैलाने की बात क्षण भर खयाल में न रही। और जब खयाल में आई तब तक समय बीत चुका था। उलटी ही बात हो गई थी। जिंदगी में ऐसे मजाक भी कभी-कभी हो जाते हैं।

राजा ने खुद ही अपनी झोली उस भिक्षु के सामने फैला दी थी। और उस राजा ने कहाः मैं भिक्षा मांगने ही आज निकला हूं। मेरे राज्य पर पड़ोसी राज्य के हमले का डर, बादल घिरे हैं युद्ध के और ज्योतिषियों ने कहा है कि अगर मैं इतना दीन-हीन हो जाऊं की आज जाकर नगर में जो भी पहला व्यक्ति मुझे मिले, उससे भिक्षा मांग लूं तो शायद युद्ध में मेरी विजय हो सकती है। ज्योतिषियों ने कहा हैः अहंकार युद्ध में हरा देगा। अगर मैं विनम्र हो जाऊं और भीख मांग लूं तो शायद जीत भी सकता हूं। इसलिए मैं भीख मांगने आया और तुम ही मुझे पहले व्यक्ति मिले हो, और शुभ है यह कि एक भिखारी से मैं भिक्षा मांग लूं।

भिखारी पर क्या गुजरी होगी ये आप सोच सकते हैं! कैसी मुसीबत का क्षण आ गया! जीवन भर उसने मांगा था, और दिया तो कभी भी न था। देने की कोई आदत ही न थी, कोई खयाल ही न था। हाथों को देने का कोई अभ्यास न था, मन को देने का विचार भी कभी नहीं आया था। लेना, और लेना, और लेना। डर गया। लेकिन और कोई होता तो इनकार भी कर देता, राजा को इनकार कैसे करे?

सपने तो खो ही गए जो राजा से मिलने की कल्पनाएं थीं वे तो धूल में गिर गईं। और पास जो थोड़े से चावल के दाने थे उनके जाने का डर पैदा हो गया था। राजा ने कहाः जल्दी करो। झोली में हाथ डाला, चावल पर मुट्ठी बांधता था, मुट्ठी खुल-खुल जाती थी। इतने चावल दे दें, अपनी गांठ से कभी दिया न था। राजा ने कहाः जल्दी करो, कुछ भी दे दो। और तब उसने मुट्ठी बाहर निकाली बड़ी मुश्किल से एक चावल का दाना वह मुट्ठी में बांध कर ला पाया था। धड़कते हृदय से, घबड़ाते मन से पसीना-पसीना हो गया था वह भिक्षु। उसने एक चावल का दाना उसकी झोली में डाल दिया। श्वास जैसे रुकी रह गई। राजा तो रथ पर बैठा और चल पड़ा। धूल के बादल उड़ते पीछे रह गए और खड़ा रह गया भिखारी। आंखों में आंसू आ गए। एक चावल का दाना अपने ही हाथ से खो दिया था। फिर दिन भर उसने भिक्षा मांगी। आश्चर्य की बात थी, उस दिन उसकी पूरी झोली भर गई, जो कभी भी न भरी थी!

लेकिन चित्त उदास था, आंखें भारी थीं, पैर ढीले थे। दुख उस दाने का था, जो दिया था। जो मिला था उसकी कोई खुशी न थी। किसको होती है? जो मिलता है उसकी खुशी किसको होती है? किसी को भी नहीं। जो खो जाता है उसका दुख जरूर होता है।

उस भिखारी पर हंसें मत, बहुत थोड़े से लोग हैं जो इसमें हंसने के हकदार हैं। क्योंकि अधिकतर लोग उसी हालत में हैं, जिसमें वह था। जो मिलता है उससे किसको खुशी होती है? लेकिन जो खो जाता है उससे दुख जरूर होता है। जो आपके पास है उससे आपको कब खुशी हुई है? लेकिन जो आपके पास नहीं है, उससे दुख जरूर हुआ है।

वह भिखारी भी एक सामान्य आदमी था। रोते मन से घर लौटा। पत्नी ने देखा की झोली भरी है तो खुश ही हो गई। उसने कहा कि आज तो भाग्य खुल गए, इतना तो कभी मिला न था। उसने कहाः पागल है तू, झोली थोड़ी खाली है। एक दाना इसमें नहीं है, जो होता, जो हो सकता था। अगर मैं थोड़ा ही कठोर होता तो आज एक दाना ज्यादा हो सकता था हमारे पास। आज हम दरिद्र हैं उस लिहाज से जितने कि हम हो सकते थे समृद्ध। पत्नी तो कुछ समझी नहीं। उसने झोली उलटाई। अब तक तो उदास था, झोली उलटाते ही छाती पीट कर रोने लगा। झोली उलटाते ही जो दाने नीचे गिरे, उनमें एक चावल का दाना सोने का हो गया था। तब वह रोने लगा कि मैंने सारे दाने क्यों न दे दिए। वे सब सोने के हो जाते।

मुझे पता नहीं है कि यह कहानी सच है या झूठ। जरूरत भी नहीं है इस बात के पता लगाने की। लेकिन जिंदगी में जो भी खोजेगा वह पाएगा कि यह कहानी सच है। जिंदगी में जो दिया जाता है, वह सोने का हो

जाता है। जिंदगी में जितना हम प्रेम बांटतें हैं, उतना ही जीवन स्वर्णिम होता चला जाता है। जीवन में जो हम रोक लेते हैं, वही मिट्टी हो जाता है। जो बांट देते हैं, वह स्वर्ण हो जाता है। धन्य हैं वे लोग जो अपने पूरे जीवन को बांटने में समर्थ हो जाते हैं। उनका पूरा जीवन ही स्वर्णिम हो जाता है।

जीवन की कीमिया बदलने की केमिस्ट्री का दूसरा फार्मूला, दूसरा सूत्र हैः प्रेम।

और प्रेम का अर्थ हैः देना। और प्रेम का अर्थ हैः मांगना नहीं। जो प्रेम देगा, वह रोज-रोज पाएगा कि उसके भीतर तो जैसे और झरने फूटने लगे हैं। और नया-नया उसके जीवन में रस आने लगा। और उसके भीतर प्रेम के नये-नये स्रोत आ गए हैं। और तब उसका हृदय परिवर्तित होना शुरू होता है।

लेकिन हम सब मांगते हैं। हम सब हाथ जोड़े खड़े हैं एक-दूसरे के द्वार पर, प्रेम दो। पत्नी पति से मांगती है, प्रेम दो; पत्नी पति से मांगती है, पति पत्नी से मांग रहा है, प्रेम दो; बच्चे मां-बाप से मांग रहे हैं, मां-बाप बच्चों से मांग रहे हैं, विद्यार्थी शिक्षक से मांग रहे हैं, शिक्षक विद्यार्थियों से मांग रहे हैं। हर आदमी एक दूसरे से मांग रहा है, प्रेम दो। और किसी को भी यह खयाल नहीं है कि प्रेम मांगने की बात नहीं है, देने की बात है। दें, और पाएंगे कि प्रेम आना शुरू हो गया है। मांगें और पाएंगे कि प्रेम के आने के सब द्वार बंद हैं।

पहला सूत्र हैः मौन।

दूसरा सूत्र हैः प्रेम।

ऐसे जीएं प्रतिपल, प्रतिक्षण जैसे जीवन प्रेम को लुटाने की एक प्रक्रिया हो।

ब्लावट्स्की हिंदुस्तान आई। सारी जमीन के हर मुल्क में गई। जगह-जगह लोगों ने देखा, उसमें एक अजीब आदत थी, एक झोला हमेशा अपने कंधे पर टांगे रहती। बस में बैठी होती, ट्रेन में बैठी होती तो झोले में हाथ डालती और कोई चीज बाहर फेंकती जाती। जगह-जगह जमीन पर हर जगह लोगों ने उससे पूछाः क्या है इस झोले में? क्या फेंकती रहती हो? लोग झोला छीन कर देखते, उसमें वह फूलों के बीज लिए रहती थी। ट्रेन में बैठी है, सड़क के किनारे फूलों के बीज फेंक रही है। कोई पूछता कि तुम पागल हो! क्या पता कि इन बीजों में से कभी फूल निकलेंगे?

वह कहतीः इसकी चिंता तुम मत करो, इसकी चिंता परमेश्वर करता है। बीज है तो फूल निकल सकता है। और लोग कहते कि कौन जानता है कि तुम दुबारा इस रास्ते से निकलोगी भी जो अपने फूलों को देख सको? वह कहतीः इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, कोई तो उन फूलों को देखेगा, कोई तो उन फूलों से खुश होगा, यह कल्पना करके भी मेरा हृदय आनंदित हो उठता है। मैं वह फूल भी देख लेती हूं, जो खिलेंगे और वे आखें भी देख लेती हूं, जो उनको देख कर खुश होंगी। और मेरा जीवन, और मेरा जीवन इन फूलों को बांटते-बांटते ही इतनी खुशी से भर गया, इतनी सुगंध से जिसका कोई हिसाब नहीं।

नहीं मैं आपसे कह रहा हूं कि आप भी कल से झोले लटका लें और फूलों के बीज फेंकने लगें। नहीं, बंबई की सड़कें बहुत सख्त हैं, यहां फूलों के बीज, बीजों से फूल होना मुश्किल हैं। पैदा नहीं होंगे। जहां आदमी का दिल सख्त हो जाता है, वहां सड़कें भी सख्त हो जाती हैं। यहां बहुत मुश्किल है। लेकिन आदमी का मन इतना सख्त कभी नहीं होता कि उससे प्रेम के बीज न फेंके जा सकें। और दुनिया के किसी नगर की सड़कें इतनी सख्त नहीं हो सकतीं कि प्रेम के बीजों पर फूल न आएं। वे जरूर आ जाएंगे। झोला मत लटकाएं, लेकिन हृदय के झोले से प्रेम के फूल जितने फेंक सकें, जितने बीज फेंक सकें--फेंके। और कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। अंग्रेजी में एक कहावत हैः इट कॉस्ट्स नथिंग टु बी काइंड, टु बी लविंग। नहीं कोई खर्च करना पड़ता प्रेमपूर्ण होने के लिए,

दयापूर्ण होने के लिए कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। और तो कुछ भी बांटेंगे तो कुछ खर्च होगा, और प्रेम बांटने में कुछ भी खर्च नहीं करना होता।

और जो मिलता है वह इतना अमूल्य है कि उसका कोई हिसाब नहीं हो सकता। उठते-बैठते, चलते-बोलते जैसे चौबीस घंटे जीवन एक प्रेम का विस्तार हो--ऐसा जो आदमी जीने लगता है, वह आदमी धार्मिक है, वह आदमी मंदिर में है, वह आदमी परमात्मा के निकट है, वह प्रार्थना कर रहा है। लेकिन हम तो किसी से मिलते हैं तो ऐसे जैसे शत्रु से मिलते हों।

लेकिन हम तो किसी को देखते हैं तो ऐसे जैसे दुश्मनों को देखा जाता है। हम तो किसी मित्र से भी हाथ मिलाते हैं तो ऐसे जैसे दो मुर्दा आदमी हाथ मिलाते हैं। कोई प्रेम नहीं होता, कोई लहर नहीं होती, भीतर कोई पुलक नहीं होती, हृदय कहीं मिलने को आतुर नहीं होता, कोई आलिंगन नहीं होता। उन हाथों में, उन आंखों में दूसरे के प्राणों तक पहुंचने का कोई स्पर्श, कोई कामना नहीं होती।

कभी देखें किसी की आंखों में प्रेम से भरके तो लगेगा कि भीतर कोई दो प्राण स्पर्श हो गए। कभी किसी के हाथ पर हाथ रख कर देखें, और बहने दें प्राणों के प्रेम को तो पता चलेगा जैसे कोई विद्युत दौड़ गई। और जिंदगी चौबीस घंटे मौका देती है कि प्रेमपूर्ण हो जाओ।

और हम कठोर, कृपण बने रह जाते हैं। फिर हम मंदिरों में पूजा करते हैं, और फिर हम शास्त्र पढ़ते हैं, और फिर हम सत्संग करते हैं। दो कौड़ी के हैं सब सत्संग और सब मंदिर और सब पूजा। जिस आदमी के हृदय में प्रेम नहीं, उस आदमी के जीवन में परमात्मा तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं, कोई द्वार नहीं।

प्रेम से भर कर जीएं, श्वास-श्वास प्रेम बन जाए तो जरूर ही जीवन बदल जाएगा और एक नये आदमी का जन्म हो जाएगा--यह दूसरा सूत्र है। और तीसरा अंतिम सूत्र... ।

पहला सूत्र हैः मौन से भरा हुआ मन।

दूसरा सूत्र हैः प्रेम से भरा हुआ हृदय।

और तीसरा सूत्र हैः अहंकार से शून्य व्यक्तित्व।

हम सब जीते हैं "मैं" के केंद्र पर--ईगो। हम सब जीते हैं "मैं" इस केंद्र पर सारा जीवन हम बुनते हैं। और यह केंद्र इतना झूठा है, इस केंद्र पर बुना गया जीवन अगर बाद में एक सपना सिद्ध हो जाता है, तो कोई आश्चर्य नहीं है। यह "मैं" कहीं है ही नहीं। यह "मैं" सबसे बड़ा झूठ जगत में हैं। और इसी पर हम जीते हैं, इसी पर हम चलते हैं, इसी पर श्रम और मेहनत करते हैं। पूछें किसी आदमी सेः किसलिए जी रहा है? किसलिए कर रहा है? किसलिए चल रहा है? तो पता चलेगा, अपने "मैं" को परिपुष्ट करने को। एक यात्रा चल रही है निरंतर और यह "मैं" इतनी झूठी बात है, जिसका कोई हिसाब नहीं।

एक संन्यासी हिंदुस्तान से कोई चौदह सौ वर्ष हुए, चीन गया। चीन का बादशाह उसके पास आया, और उस बादशाह ने कहाः मैंने सब भांति "मैं" को भरने के उपाय कर लिए। जितनी दूर तक जमीन दिखाई पड़ती थी मुझे, मैंने उसे जीत लिया। मेरा राज्य दूर सीमाओं तक पहुंच गया है। लेकिन मेरे "मैं" की कोई तृप्ति न हुई, मेरा अहंकार न भरा। और जब मैं बूढ़ा होने लगा, और घबड़ा गया कि इस अहंकार को तो भरता हुआ नहीं पाता हूं तो मैंने साधुओं की, बुजुर्गों की सलाह ली। उन्होंने कहाः सब त्याग कर दो। तो मैंने सब त्याग करके भी देख लिया, लेकिन मेरा अहंकार अब भी वहीं का वहीं खड़ा है। मैं निराश हो गया हूं, क्या करूं? किसी ने मुझे कहा कि तुम यहां आते हो, तुम्हारे पास जाऊं। उस फकीर ने कहाः अभी लौट जाओ, सुबह चार बजे आ जाना। और या तो कल तुम रहोगे या तुम्हारा अहंकार रहेगा, दो में से एक को मैं खत्म कर दूंगा।

उस फकीर की बात तो बड़ी अजीब थी। लेकिन फकीर अक्सर अजीब होते रहे हैं। उस राजा ने सोचा कोई बात नहीं, कहा कि मैं चार बजे आ जाऊंगा। क्या आप विश्वास दिलाते हैं कि मेरे अहंकार को समाप्त कर देंगे। उस फकीर ने कहाः निश्चित, लेकिन एक बात खयाल में रहे अहंकार को साथ ले आना, घर मत छोड़ आना, नहीं तो मैं खत्म क्या करूंगा? राजा को पक्का हो गया कि आदमी पागल है। अहंकार भी कहीं कोई घर छोड़ कर आ सकता है! वह तो प्राणों में गुथा है, उसे छोड़ने का उपाय ही अगर होता तो राजा कभी का छोड़ आता। सब उपाय कर चुका था, वह तो छूटता न था। और यह पागल कहता है, छोड़ कर मत आ जाना।

लेकिन चार बजे वह आया। अंधेरी रात, वह फकीर अपने डंडे को लेकर मौजूद था। राजा डरा भी, यह आदमी पागल है। अंधेरी रात, अकेली पहाड़ी, डंडा लिए हुए है, यह क्या करना चाहता है, इरादे क्या हैं? इसकी नियत, नियत क्या है? उस फकीर ने कहाः ले आए अपने अहंकार को! राजा ने कहाः आप अजीब बातें कर रहे हैं, अहंकार तो मेरे भीतर बैठा हुआ है, मैं उसे छोड़ कर कहां आ सकता हूं? उस फकीर ने कहाः तब ठीक है। तुमने कभी भीतर खोजा है कि बिना खोजे कह रहे हो भीतर अहंकार बैठा हुआ है? कोई हर्ज नहीं, तो तुम ले तो आए हो, भीतर ही सही। बैठ जाओ आंख बंद करके और खोजो भीतर कहां है? मैं डंडा लिए बाहर मौजूद हूं, जैसे ही मिले, मुझे खबर करना।

उस राजा ने आंख बंद की। अंधेरी रात, सन्नाटा पहाड़ी का, वह पागल फकीर सामने डंडा लिए हुए। और वह राजा भीतर खोजने लगा, कोने-कातर मन के झांकने लगा, भीतर यात्रा करने लगा, कहां है यह "मैं"? आधी घड़ी बीत गई। फकीर ने उसे हिलाया कि सो तो नहीं गए हो, खोज रहे हो न! उस राजा ने कहाः तुम्हारे डंडे के कारण सो तो नहीं सकूंगा। और खोज भी रहा हूं। और बड़ी हैरानी की बात है कि मैं सब तरफ देख रहा हूं, वह कहीं दिखाई नहीं पड़ता है।

उस फकीर ने कहाः एक बार और देख लो, किसी कोने में कहीं छिपा हो! राजा ने फिर आंख बंद की और खोजा। और वह राजा जो बहुत तनाव से भरा हुआ आया था, सुबह सूरज की किरणें फूटने लगीं, और वह आंख बंद किए बैठा है। उसके चेहरे का सारा तनाव विलीन हो गया है; उसका चेहरा जैसे एक शांत मूर्ति बन गया है; जैसे एक निर्मल झील बन गया है। जैसे भीतर कोई चीज विलीन हो गई है, उसकी खबर चेहरे तक आ गई है। उस फकीर ने उसे फिर पूछा कि मेरे मित्र, मिला? वह राजा हंसने लगा, उसने फकीर के पैर छुए और कहाः मैं जाता हूं, वह नहीं मिला। और मैं जान गया कि वह नहीं है। मैंने खोजा न था भीतर आज तक, इसलिए वह था। मैंने खोजा और वह नहीं है।

अहंकार अंधकार की भांति है। अगर दीया लेकर चले जाएं खोजने तो वह कहीं न मिलेगा।

मैंने सुना है कि एक बार अंधकार ने भगवान से शिकायत कर दी थी कि सूरज मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है। सुबह से मेरा पीछा करता है, अकारण। कोई झगड़ा नहीं, कोई मनमुटाव नहीं, कभी कोई बातचीत नहीं हुई उससे, सुबह से मेरे पीछे पड़ता है, सांझ तक खदेड़ता है। मैं थक मरता हूं, परेशान हो जाता हूं। रात विश्राम भी नहीं कर पाता कि यह बेईमान फिर सुबह से खड़ा हो जाता है। और मेरी समझ में नहीं आता कि कहां जाऊं, किससे शिकायत करूं? तो भगवान से उसने जाकर कहा कि कुछ समझाएं इस सूरज को। यह कब तक चलेगा? यह बहुत दिनों से चल रहा है, और मैं घबड़ा गया हूं। दुश्मनी भी होती तो एक बात थी। भगवान ने सूरज को बुलाया। कहते हैंः भगवान पर ऐसी मुसीबतें आती रहती होंगी, इतना उपद्रव बना दिया है, मुसीबत आनी स्वाभाविक है।

सूरज को बुलाया और उससे कहा कि क्यूं यह नासमझी करते हो? अंधेरे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, क्यों उसका पीछा करते हो, क्यों उसे परेशान किए हुए हो? तुम भी रहो, उसे भी रहने दो। को-एक्झिस्टेंस में क्या बुराई है? कोई बुराई है क्या? दुनिया के सब राजनीतिज्ञ को-एक्झिस्टेंस की बातें करते हैं! सब साथ-साथ रहो, हर्जा क्या है? तुम भी साथ-साथ रहो। हिंदू-मुसलमान साथ रहते हैं। कम्युनिस्ट, रूस और कैपिटलिस्ट अमरीका साथ-साथ रहते हैं। और शूद्र और ब्राह्मण साथ-साथ रहते हैं, तो तुममें कौन सा झगड़ा है? न तुम मुसलमान हो, न हिंदू हो, न कम्युनिस्ट हो, न कैपिटलिस्ट हो, साथ-साथ रह सकते हो। को-एक्झिस्टेंस में कोई बुराई नहीं।

सूरज भौचक्का खड़ा रहा और उसने कहा कि मैं समझ नहीं पाता, कौन है यह अंधकार? कहां है यह? मेरा आज तक उससे कोई मिलना नहीं हुआ। मैं उसे क्यों सताऊंगा, मेरी मुलाकात भी नहीं है? झगड़े की तो बात दूर, मेरी दोस्ती भी नहीं है। दोस्ती न हो तो झगड़ा भी नहीं हो सकता। उसने कहा, आप कृपा करें और उसे मेरे सामने बुला दें, मैं माफी मांग लूं। भूल-चूक में कोई गलती हो गई हो और आइंदा के लिए खयाल रखूं, उसके पीछे न जाऊं।

इस बात को हुए भी कई हजार साल हो गए। भगवान तब से कोशिश में लगा है कि अंधेरे को सूरज के सामने ले आए। अब तक ला नहीं पाया है। और मैं आपको कहे देता हूं, कितना ही सर्वशक्तिमान हो, कभी भी न ला पाएगा। यह मामला फाइल में ही पड़ा रहेगा, यह मुकदमा निपट नहीं सकता। इसके निपटने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि सूरज तब तक सामने न आए अंधकार के, तब तक मानने को राजी नहीं है शिकायत को। अंधकार कैसे सूरज के सामने लाया जाए, नहीं लाया जा सकता, क्यों? कभी सोचा! रोज हम देखते हैं कि घर में दीया जलता है और अंधेरा विलीन हो जाता है। कभी सोचा, क्यों?

नहीं, सोच-विचार तो हम करते ही नहीं, इसलिए काहे को सोचा होगा! अंधकार अगर घर में लाना हो तो कहीं से पोटलियां बांध कर आप ला सकते हैं? कि अगर दुश्मन के घर में अंधकार डालना हो तो पेटियों में बंद करके अंधकार ला सकते हैं दुश्मन के घर में छोड़ने को? नहीं। घर में अंधकार हो और निकालना हो, निकाल सकते हैं? नहीं।

अंधकार है ही नहीं। इसलिए न उसे लाया जा सकता है और न निकाला जा सकता है। अंधकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है। अंधकार सिर्फ प्रकाश का अभाव है, प्रकाश की गैर-मौजूदगी। प्रकाश की एब्सेंस। अंधकार किसी चीज की प्रेजेंस नहीं है, किसी चीज की उपस्थिति नहीं है। किसी चीज की अनुपस्थिति है। इसलिए अंधकार के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन दीया जलाओ, और वह नहीं है। क्योंकि वह दीये की गैर-मौजूदगी थी।

अहंकार भी अंधकार की भांति है। और तब तक है जब तक हम भीतर जागरण का दीया नहीं जलाते। और जिस दिन हम भीतर जाग कर खोजने जाएंगे, उस दिन वह नहीं पाया जाएगा।

तीसरा सूत्र हैः अहंकार-शून्य व्यक्तित्व की उपलब्धि।

कैसे होगी यह, घर-द्वार छोड़ने से? नहीं होगी, घर-द्वार छोड़ने से यह अहंकार और पैदा हो जाएगा कि मैं त्यागी हूं। धन छोड़ने से? नहीं होगी, यह धन छोड़ने से और खयाल हो जाएगा कि मैं, मैंने इतने धन पर लात मार दी। वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़े हो जाने से? नहीं छूटेगा यह। वस्त्रों का अपना अहंकार होता है, नग्नता का अपना अहंकार होता है। बच नहीं सकते इससे इस तरह। इससे मुक्त होने का एक ही उपाय है कि भीतर जाएं और खोजें।

और मैंने जो पहले दो सूत्र कहे हैंः जो उन दो सूत्रों तक काम करेगा उसे भीतर जाकर खोजना एकदम आसान हो जाएगा। खयाल करें फिर से लौट कर जो आदमी मौन हो जाएगा वह भीतर खोज सकता है। और जो आदमी प्रेम से भर जाएगा उसके अहंकार की तो वैसे ही मृत्यु हो जाती है। क्योंकि प्रेम दान करने में अहंकार विसर्जित हो जाता है।

हम प्रेम तभी कर सकते हैं जब हम अहंकार से भरे हुए न हों। जब मैं अपने "मैं" से बहुत भरा होता हूं, तो कैसे प्रेम करूंगा? वह ही मेरा "मैं" तो लोहे की दीवाल है--तिजोड़ी, जिसमें मैं अपने प्रेम को बंद करता हूं। जब मुझे अपने प्रेम को फैलाना पड़ेगा तो मुझे अपने अहंकार की दीवाल तोड़ कर बहना पड़ेगा।

तो पहले दो सूत्रः मौन और प्रेम को जो जीवन में साधेगा, तीसरा सूत्र बहुत आसान हो जाएगा। वह अपने भीतर जाकर खोज सकता है। और देख सकता है कि वहां कोई अहंकार नहीं है। और जहां अहंकार नहीं है, जिस क्षण चित्त मौन है, प्रेम से परिपूर्ण है, और अहंकार से शून्य है, वही क्षण परमात्मा की उपलब्धि का क्षण बन जाता है। वही सत्य की उपलब्धि का क्षण बन जाता है। वही सत्य जीवन की क्रांति का सूत्र हो जाता है, आधार हो जाता है। जीवन को बदलना है तो इन तीन सूत्रों पर जीवन को गतिमय करना होता है।

मेरे कहने से नहीं कोई जीवन को गतिमय करेगा और न करना चाहिए। लेकिन सोचना, विचार करना, थोड़ा प्रयोग करके देखना। हो सकता है, हो सकता है कि साधारण सी दिखती देह के भीतर, इस साधारण से पार्थिव शरीर के भीतर, वह ज्योति जग जाए जो परमात्मा की है।

अगर एक मनुष्य के भीतर भी कभी वह ज्योति जगी है तो हर, हर मनुष्य, हर पीढ़ी में, हर सदी में हकदार हो गया है उसको पाने का। अगर एक बीज से भी पौधा निकला है और फूल आए हैं तो सब बीज हकदार हो गए उसे पाने के। हम सबके भीतर परमात्मा मौजूद है। काश! हम उसे विकसित कर पाएं, देख पाएं, जान पाएं तो जीवन धन्य हो जाता है, और कृतार्थ हो जाता है। परमात्मा ऐसी धन्यता सभी को दे, इसकी अंत में प्रार्थना करता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, इतने मौन से, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में पुनः सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

जीवन में स्वयं के प्रश्नों का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक मित्र ने पूछा हैः आपके कथनानुसार सब धर्मशास्त्र, धार्मिक पुस्तकें व्यर्थ हैं, जिनमें बुद्ध, महावीर वगैरह के विचार व्यक्त होते हैं। तो आपके विचारों की अभिव्यक्ति जिन पुस्तकों से है उन्हें भी व्यर्थ क्यों न माना जाए? मानव अपने अनुभवों से ही क्यों न आगे बढ़े, आपको सुनने की भी क्या आवश्यकता है?

बहुत ही ठीक प्रश्न है। जरूरी है उस संबंध में पूछना और जानना। लेकिन किसी गलतफहमी पर खड़ा हुआ है। मैंने कब कहा कि किताबें व्यर्थ हैं? मैंने कहाः शास्त्र व्यर्थ हैं। किताब और शास्त्र में फर्क है। शास्त्र हम उस किताब को कहते हैं जिस पर विचार नहीं करते और श्रद्धा करते हैं। श्रद्धा और विश्वास अंधे हैं। और विश्वास के अंधेपन के कारण किताबें शास्त्र बन जाती हैं, आप्तवचन बन जाती हैं, ऑथेरिटी बन जाती हैं। फिर उन पर चिंतन नहीं किया जाता, फिर उन्हें केवल स्वीकार किया जाता है। फिर उन पर विचार नहीं किया जाता, उन पर विवेक नहीं किया जाता, अंधानुकरण किया जाता है।

किताबों के मैं पक्ष में हूं, शास्त्रों के पक्ष में मैं नहीं हूं। शास्त्र बनाते हैं व्यक्ति को अंधा, शास्त्र के साथ एक ऑथेरिटी जुड़ी है, उसने जो भी कहा है वह ठीक है। उस पर चिंतन और मनन की कोई गुंजाइश नहीं है। उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है। और अगर कोई भी चीज उसके विरोध में पड़ती हो तो वह अनिवार्य रूप से गलत है।

एक मुसलमान खलीफा सिकंदरिया गया। सिकंदरिया में दुनिया का सबसे बड़ा पुस्तकालय था। और दुनिया के लाखों हस्तलिखित ग्रंथ वहां इकट्ठे थे। कहते हैं, उस संग्रह के नष्ट हो जाने से पुरानी दुनिया का सारा ज्ञान हमें उपलब्ध नहीं हो सका। हम उससे वंचित हो गए। उस पुस्तकालय को उस मुसलमान खलीफा ने आग लगवा दी। बड़ा था पुस्तकालय इतना कि छह महीने तक आग बुझ नहीं सकी। किस वजह से आग लगा दी? उसने क्या तर्क दिया?

वह अपने हाथ में मशाल लेकर एक हाथ में और दूसरे हाथ में कुरान लेकर वहां पहुंचा। और उसने उस पुस्तकालय के सबसे प्रमुख आचार्य को कहाः ये जो लाखों ग्रंथ हैं तुम्हारे इस पुस्तकालय में, क्या इनमें वे ही बातें लिखी हैं जो कुरान में लिखी हैं? अगर वे ही बातें लिखी हैं तो इनकी कोई जरूरत नहीं है, कुरान काफी है। और अगर इन किताबों में ऐसी बातें भी लिखी हैं जो कुरान में नहीं हैं, तब तो इन किताबों की बिल्कुल भी जरूरत नहीं है। क्योंकि जो कुरान में नहीं है वह सत्य नहीं है और दोनों हालतों में मैं इसको आग लगा देता हूं।

और उसने उस पुस्तकालय में आग लगा दी। जो छह महीने तक जलती रही। दुनिया की बहुत बड़ी संपदा उस आदमी ने नष्ट कर दी। कुरान उसके लिए किताब न थी, कुरान उसके लिए शास्त्र था। शास्त्र खतरनाक सिद्ध हो गया। कुरान भी एक किताब होती तो उस बड़े किताब के संग्रह में वह भी अपना स्थान पा जाती। लेकिन वह किताब न थी।

बाइबिल कहती है कि दुनिया ईसा से चार हजार वर्ष पहले निर्मित हुई। और जब वैज्ञानिकों ने खोज की तो उन्होंने पाया, जमीन तो कई अरब वर्ष पुरानी है। तो जिन लोगों ने यह कहा कि जमीन अरब वर्ष पुरानी है,

दो अरब वर्ष पुरानी है ईसाई जगत उनके खिलाफ खड़ा हो गया। और उन्होंने कहाः यह कभी नहीं हो सकता। जो हमारे शास्त्र में है वह गलत नहीं हो सकता। तो वैज्ञानिकों की हत्याएं की गईं, उनको सजाएं दी गईं, उनको जलाया गया। और उनसे कहा गया कि लिखित रूप से माफी मांगो कि तुमने जो लिखा है वह गलत है। तुम्हारी खोज गलत, तुम्हारा विज्ञान गलत। हमारा शास्त्र कभी गलत नहीं हो सकता। वे आप्तवचन हैं, वे परमात्मा के शब्द हैं।

बाइबिल एक किताब हो तो उसका स्वागत है। लेकिन बाइबिल एक शास्त्र हो उसका कोई विचारशील व्यक्ति स्वागत नहीं कर सकता। क्योंकि शास्त्र आप्तता, ऑथेरिटी हो जाना मनुष्य के मानसिक विकास में बाधा बनती है। मैं शास्त्रों के विरोध में हूं, किताबों के विरोध में नहीं हूं। तो मेरी जो किताबें आपको दिखाई पड़ रही हैंः वे कोई भी शास्त्र नहीं हैं, वे गलत हो सकती हैं। उनमें बहुत सी गलतियां होंगी और उनका कोई दावा नहीं है कि वह सत्य का अंतिम प्रमाण है। वे आपको मानने के लिए नहीं दी गई हैं, आपको विचार करने के लिए दी गई हैं। आप सोचें और कचरा पाएं तो फेंक दें उनको, उनको एक क्षण भी घर में रखने की जरूरत नहीं।

और अगर कोई बात ठीक लगे खुद के सोच-विचार से तो वह आपकी अपनी हो गई। उससे मेरा कोई नाता नहीं है, वह आपके चिंतन का फल है। तो वे जो किताबें हैंः शास्त्र नहीं हैं, उन्हें मान लिए जाने का कोई आग्रह नहीं है। शास्त्र का आग्रह खतरनाक है। शास्त्र का आग्रह है कि मैं ही सत्य हूं। और फिर इससे भिन्न जो है, वह असत्य है। और फिर ये प्रवृत्ति अंत में अत्यंत खतरनाक परिणामों पर ले जाती हैं, परसिक्यूशन पैदा होता है। फिर जो विरोधी है उसको खत्म करो, अलग करो। क्योंकि वह असत्य है। फिर उसकी किताबों को जलाओ, उसके मंदिरों को गिराओ, उसके लोगों की हत्या करो--क्योंकि वह असत्य है। और सत्य के नाम पर ये सब पाप चलते रहे हैं। और इन पापों के पीछे एक ही कारण है कि हमने कुछ किताबों को शास्त्र का ओहदा दे दिया।

सब किताबें किताबें हैं, कोई किताब शास्त्र नहीं है। कोई किताब परमात्मा की बनाई हुई नहीं है। कोई किताब अंतिम नहीं है। मनुष्य निरंतर विकास कर रहा है। और सब किताबें मनुष्य की बनाई हुई हैं। और मनुष्य की समझ आगे बढ़ती है तो किताबें उसमें बाधा नहीं बन सकतीं। समझ आगे बढ़ेगी तो किताबों को पीछे हट जाना पड़ेगा। लेकिन शास्त्र पीछे हटने का नाम नहीं लेते, क्योंकि उनका दावा है कि वे पूर्ण रूप से सत्य हैं। उनके आगे-पीछे कोई फर्क नहीं हो सकता।

मैं किताब के विरोध में नहीं हूं, नहीं तो मेरी किताब कैसे आपके सामने हो सकती थी? आपको दिख गई यह भूल तो मुझको न दिखती। मैं शास्त्र के विरोध में हूं। एक ऐसी दुनिया चाहिए जहां किताबें तो बहुत हों, विचार तो बहुत हों, लेकिन अंधे लोग न हों, शास्त्र न हों, ऑथेरिटीज न हों। तो दुनिया में जो क्लेश है, संघर्ष है, विवाद है--वह न हो।

एक मित्र के घर मैं मेहमान था। उन्होंने मुझसे कहा कि मेरी मां बहुत धार्मिक है। मैंने कहाः मैं जरूर आपकी मां को, दो-चार दिन यहां हूं अध्ययन करूंगा। क्योंकि धार्मिक आदमी मुश्किल से ही मिलते हैं। दूसरे दिन सुबह मैं एक किताब पढ़ रहा था। सर्दी के दिन थे, और बाहर बैठा हुआ उनके बगीचे में। उनकी मां वहां आईं। उसने मुझसे पूछा, आप क्या पढ़ रहे हैं? मैं पढ़ तो कुछ और ही रहा था, लेकिन मैंने उससे कहा कि मैं कुरान शरीफ पढ़ रहा हूं। वह थी कट्टर हिंदू। उसने मेरे हाथ से किताब छीन कर फेंक दी। और उसने कहाः क्या हमारे धर्म में किताबें नहीं हैं पढ़ने को जो आप कुरान शरीफ पढ़ रहे हैं? मैंने उनके पुत्र को कहाः आपकी मां होगी हिंदू, लेकिन धार्मिक नहीं है। धार्मिक आदमी किसी की किताब छीन कर फेंकेगा?

लेकिन हिंदू फेंक सकता है, मुसलमान फेंक सकता है, जैन फेंक सकता है--फेंकते रहे हैं। ऐसी किताबें हैं इस मुल्क में हिंदुओं की भी, जैनों की भी जिनमें यह लिखा हैः हिंदुओं की किताब में लिखा है कि अगर पागल हाथी तुम्हारे पीछे दौड़ रहा हो तो उसके पैर के नीचे दब कर मर जाना, लेकिन जैन मंदिर सामने हो तो उसमें शरण मत लेना। मर जाना बेहतर है, लेकिन जैन मंदिर में जाना बेहतर नहीं है। ठीक इसके उत्तर में जैन किताबें भी हैं। उनमें भी यही लिखा हुआ है कि पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना बेहतर है, लेकिन हिंदू शिवालय में शरण मत लेना। वह बहुत बड़ा पाप है। उससे मरना अच्छा है। इस बुद्धि के मैं विरोध में हूं। इस बुद्धि ने बहुत अहित किया है।

मेरा किताबों से, विचारों से, जीवन को जिन्होंने समृद्ध किया है उनकी अनुभूतियों से क्या विरोध हो सकता है? लेकिन जड़ता से मेरा विरोध है। और इस आग्रह से कि जो हम पकड़ कर बैठे हैं, वही सत्य है। यह बहुत हिंसात्मक, वायलेंट माइंड की सूचना है। यह अहिंसक प्रेमपूर्ण चित्त ऐसे आग्रह नहीं करता है। वह हमेशा खुला होता है सोचने को, विचार करने को। हमेशा निष्पक्ष होता है। उस संबंध में मैंने परसों आपसे बात की है, इसलिए और उस संबंध में आगे कुछ नहीं कहूंगा। इतना ही पुनः कह देता हूंः किताबों के मैं पक्ष में हूं, शास्त्रों के मैं पक्ष में नहीं हूं। और मेरा फर्क आप समझ लें।

जिस किताब को हम आत्यंतिक पवित्रता से मंडित कर देते हैं, वह किताब शास्त्र बन जाती है। और शास्त्र बनते ही वह किताब अत्यंत खतरनाक हो जाती है। सभी किताबों का ये तेजोमंडल छीन लेना है। कुरान का भी, बाइबिल का भी, गीता का भी, वेद का भी, महावीर, बुद्ध के वचनों का भी--ये तेजोमंडल छीन लेना है। उन्हें किताबों की गरिमा देनी है, लेकिन शास्त्रों की नहीं। तो धर्म भी विकसित होगा।

विज्ञान विकसित हो रहा है। क्योंकि विज्ञान में कोई शास्त्र नहीं है, सिर्फ किताबें हैं। धर्म रुका हुआ है। क्योंकि धर्म में शास्त्र हैं, किताबें नहीं हैं। किताबें परिवर्तित होने को राजी हैं, शास्त्र परिवर्तित होने को राजी नहीं होते। जीवन का नियम हैः परिवर्तन। उसमें जो चीज भी अपरिवर्तित होने की जिद करती है वह खुद तो मर जाती है, उसके आस-पास जो लोग इकट्ठे हो जाते हैं वह भी मुर्दा हो जाते हैं। शास्त्रों के कारण समाज मुर्दों का एक घर हो गया है। किताबें तो गतिमान कर सकती हैं, लेकिन शास्त्र रोक लेते हैं। मैं समझता हूं कि मेरा फर्क आपके खयाल में आ गया होगा। फर्क बहुत बारीक नहीं है; बहुत स्पष्ट है, बहुत साफ है।

दूसरे मित्र ने पूछा है कि यदि मनुष्य के प्रयास से सत्य या परमात्मा नहीं पाया जा सकता, तब तो फिर परमात्मा की कृपा या प्रसाद या ग्रेस से ही पाया जा सकेगा?

हमें दो ही विकल्प दिखाई पड़ते हैं। या तो हमारे प्रयास से मिलेगा, और या फिर किसी की कृपा से मिलेगा। तीसरे विकल्प का हमें कोई भी पता नहीं है। मैं उस तीसरे विकल्प के संबंध में थोड़ी बातें आपको कहना चाहूंगा।

एक ऑल्टरनेटिव तो यह है कि हम अपने प्रयास से सत्य को पा लेंगे। मैंने आपसे परसों कहाः आपके प्रयास से सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य की बुद्धि अत्यंत सीमित है। उसकी सामर्थ्य अत्यंत छोटी है। वैसी ही है उसकी सामर्थ्य जैसे कोई प्याली में सागर को भरने चला जाए। इसलिए मनुष्य के प्रयास से तो परमात्मा नहीं पाया जा सकता। परमात्मा है विराट, सत्य है विशाल और अनंत, और मनुष्य है छोटा सा। यह केवल अहंकार है मनुष्य का कि वह सोचे कि मैं परमात्मा को पा लूंगा।

मनुष्य के प्रयास से तो परमात्मा नहीं पाया जा सकता। तो एकदम से हमारा दूसरे नतीजे पर पहुंच जाना स्वाभाविक हो जाता है कि फिर उसकी ही कृपा से वह प्राप्त होगा। नहीं, उसकी कृपा से भी नहीं। क्योंकि कृपा केवल वही कर सकता है जो अकृपा भी करने में समर्थ हो। दया केवल वही कर सकता है जो क्रूर और कठोर भी हो। परमात्मा की कृपा का कोई मतलब नहीं होता। क्योंकि परमात्मा अकृपा करने में समर्थ नहीं है। उसकी कृपा का कोई अर्थ नहीं है। सूरज अपनी किरणें फेंक रहा है। आपका द्वार खुला होता है, तो प्रकाश भीतर आ जाता है; नहीं खुला होता, बाहर ठहर जाता है।

सूरज न तो किसी पर कृपा कर रहा है, और न किसी पर अकृपा कर रहा है। न किसी को शत्रु मान रहा है, न किसी को मित्र। परमात्मा तो सभी को सूरज की भांति उपलब्ध है। जिनके द्वार खुले हैं, उन्हें उपलब्ध हो जाता है। जिनके द्वार बंद हैं, वे वंचित रह जाते हैं। इसमें परमात्मा की कृपा और अकृपा का कोई सवाल नहीं है। सवाल हैः हमारे द्वार के खुले होने का। और मैंने आपसे कहा, आपके प्रयास से होगा नहीं। क्योंकि आपका प्रयास ही द्वार बंद कर लेता है। आपका इफर्ट ही बीच में दीवाल बन जाता है।

एक छोटी सी कहानी कहूं शायद उससे मेरी बात खयाल में आए।

यूरोप में एक बहुत बड़ा जादूगर था हाउदिनी। उसकी बड़ी कुशलता थी। उसकी बड़ी ख्याति थी। उसके जादू के करिश्में सारी दुनिया में प्रख्यात थे। एक खास उसकी कुशलता थी जिसकी वजह से वह और जादूगरों से ज्यादा प्रसिद्ध था। वह यह था कि वह कैसे भी ताले खोलने में क्षण भर में समर्थ हो जाता था। यूरोप और अमरीका की बड़ी से बड़ी कारागृहों में उसे बंद किया गया, और तीन मिनट के भीतर वह दीवाल के बाहर आ गया। सब तरह की हथकड़ियां और सब तरह की बेड़ियां उसको पहनाई गईं, लेकिन तीन मिनट से ज्यादा कोई जेल का अधिकारी उसे भीतर बंद नहीं रख सका। यूरोप, अमरीका के सभी बड़े-बड़े जेलों में उसका प्रदर्शन हुआ, हैरानी की बात थी।

और अगर यह संभव था तब तो कोई भी कैदी बाहर हो सकता है उस शिल्प को सीख कर, उस कला को सीख कर। सब तरह के उपाय किए गए, लेकिन तीन मिनट से ज्यादा उसे किसी कोठरी में कभी बंद नहीं रखा जा सका। सब तरह के ताले और सब तरह की जंजीरें वह खोल कर बाहर आ जाता था। लेकिन एक दिन एक छोटे से द्वीप पर वह असफल हो गया, तीन घंटे लग गए और कोठरी के बाहर नहीं निकल सका। थक गया, सब उपाय कर लिए लेकिन न मालूम कैसा ताला था कि खुलता न था। आखिर वह थक कर गिर पड़ा, और गिरते ही उसका धक्का लगा और दरवाजा खुल गया। दरवाजा बंद था ही नहीं। दरवाजा बंद होता तो वह खोल भी लेता। दरवाजा खुला हुआ अटका था। ताला झूठा था, ताला लगा नहीं था। वह ताले खोलने में लगा रहा। ताला लगा होता तो खुल जाता, ताला लगा ही नहीं था। दरवाजा सिर्फ अटका था। तीन घंटे लग गए, बाहर भीड़ खड़ी थी।

हैरान हो गई भीड़! जो तीन मिनट में निकल आया था कभी भी, आज क्या हो गया था? लेकिन उस कारागृह का जो जेलर था, वह अदभुत होशियार रहा होगा। उसने और भी बड़ी जादू की ट्रिक कर दी। उसने दरवाजा खुला छोड़ दिया, ताला नहीं लगाया। वह गैर-लगे ताले को खोलने की कोशिश करता रहा। गैर-लगा ताला कहीं खुल सकता है? जो लगा ही न हो, वह खुलेगा कैसे? थक गया और गिर पड़ा पसीने से लथपथ। सारा जीवन मिट्टी हो गया था। जीवन भर की प्रसिद्धि खाक हुई जाती थी। पसीने से तरबतर वह गिरा, धक्का लगा दरवाजा खुल गया। वह हैरान होकर रह गया।

यह घटना मैं क्यों कह रहा हूं? इस आदमी को तीन घंटे कौन सी चीज रोके रही, ताला? ताला तो खुला हुआ था। इसका प्रयास? इसकी खोलने की कोशिश इसको अटकाए रखी। कौन सी चीज इसे बाहर ले आई?

इसका थक जाना, इसका गिर जाना, इसका असफल हो जाना। इसके प्रयास कोई काम नहीं किए। परमात्मा के द्वार पर भी कोई ताला नहीं लगा है जिसे आप किसी चाबी से खोलने की कोशिश कर लें।

परमात्मा के द्वार खुले हुए हैं। प्रेम के द्वार बंद कैसे हो सकते हैं? उन पर ताले कैसे हो सकते हैं? ताले तो उन दरवाजों पर होते हैं जो प्रेम के नहीं हैं। परमात्मा का द्वार तो खुला हुआ है। कोई ताला नहीं है। इसलिए जो खोलने की कोशिश करेगा वह भटक जाएगा। फिर आप क्या करें? अपनी ही इस असमर्थता को देख लेना, अपनी इस सीमितता को देख लेना, अपनी इस क्षुद्रता को पहचान लेना--अपनी सामर्थ्य और सीमा को जान लेते ही व्यक्ति सारा प्रयास छोड़ देता है।

और उस प्रयास के छूटने में ही, उस लेट-गो में जहां मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं--अचानक, अचानक उसकी किरणें आनी शुरू हो जाती हैं, द्वार खुल जाता है। न तो यह मेरे प्रयास का कारण है, न उसकी कृपा का। यह मेरे अप्रयास का फल है। यह मेरी इफर्टलेसनेस का फल है। मैंने छोड़ दिया अपने को, मैंने अपनी कोई कोशिश जारी नहीं रखी। देखें, करके देखें।

छोड़ कर देखें कभी क्षण भर को चौबीस घंटे में। कुछ भी न करें, बिल्कुल ऐसे हो जाएं जैसे नहीं हैं। और देखें क्या धीरे-धीरे उस न होने में से कोई क्रांति आनी शुरू होती है। क्या उस परिपूर्ण रूप से छूट जाने में से कुछ भी न करने में से कुछ उपलब्ध होता है--देखें। यह कोई समझ लेने भर की बात नहीं हो सकती। इसे तो देखना ही पड़ेगा। इसमें से तो गुजरना ही पड़ेगा।

कोई आदमी तैरने के संबंध में कितने ही शास्त्र पढ़ ले और अगर नदी में न उतरा होतो चाहे तैरने पर व्याख्यान दे, चाहे तैरने पर किताबें लिखे, चाहे तैरने के संबंध में किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो जाए; लेकिन पानी में धक्का देते ही उसका ज्ञान दो कौड़ी का साबित हो जाएगा। वहां पानी में तैरने के शास्त्र पढ़ने का सवाल नहीं है, तैरना आना चाहिए। और जो अनुभव है तैरने वाले का वह गैर-तैरने वाला कितना ही शास्त्र पढ़े, नहीं हो सकता है।

ध्यान का जो अनुभव है वह परमात्मा के सागर में कूदने का अनुभव है। कूदे बिना नहीं हो सकता। इशारे किए जा सकते हैं। उस दिशा में थोड़ी सी सूचनाएं दी जा सकती हैं। उस दिशा में थोड़े से इंगित किए जा सकते हैं। लेकिन उन इंगित को पकड़ मत लेना, वे बहुत मूल्य के नहीं हैं। जैसे अगर मैं रात बाहर आपको ले जाऊं और अंगुली से दिखाऊंकि देखो वह चांद है, और आप मेरी अंगुली पकड़ लें तो सब गड़बड़ हो जाएगी। अंगुली को भूल जाना है और चांद को देखना है। लेकिन अक्सर यही हो जाता हैः इशारे पकड़ लिए जाते हैं और जिसकी तरफ इशारा है वह भूल जाता है।

मैं जो कह रहा हूं, उस पर बहुत सोच-विचार करने की जरूरत नहीं है। उसको पकड़ लेने की बहुत जरूरत नहीं है। जिस तरफ मैं इशारा कर रहा हूं उस तरफ थोड़ी आंख उठाने की जरूरत है। मैं यह कह रहा हूंः थोड़ा करके देखें कि न करने की स्थिति क्या है? स्टेट ऑफ नो एक्शन क्या है? थोड़ी देर नो एक्शन में होना क्या है? अकर्म में होना क्या है? थोड़ा छोड़ें और देखें। और तब आप पाएंगे न तो आपके प्रयास से वह मिलता है, न उसकी कृपा से--मिलता है आपके अप्रयास से, मिलता है आपके मिट जाने से, मिलता है आपके न हो जाने से।

एक सूफी गीत है। एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर गया। उसने द्वार खटखटाए हैं, पीछे से पूछा गया, कौन है? उसने कहाः मैं हूं, तेरा प्रेमी। फिर भीतर सन्नाटा हो गया। वह द्वार खटखटाने लगा जोर से, जैसा कि सभी प्रेमी आकुलता में खटखटाते हैं। उसके प्राण छटपटाने लगे। भीतर से आवाज बंद हो गई थी। वह चिल्लाया

कि क्या हो गया है तुम्हें, बोलती क्यों नहीं हो? उसकी प्रेयसी ने कहाः लौट जाओ, प्रेम के घर में दो नहीं समा सकते। तुम कहते हो--मैं हूं, तुम अभी हो तो प्रेम के घर में दो कैसे बन सकेंगे? जाओ जिस दिन न हो जाओ, उस दिन आना। वह वापस लौट गया। फिर वर्ष आए और गए। वर्षों के बाद वह फिर वापस आया। द्वार पर उसने दस्तक दी। फिर वही प्रश्न, कौन हो? अबकी बार उसने कहाः तू ही है, और कोई भी नहीं। सूफी गीत कहता है कि द्वार खुल गए। मैं अभी द्वार खुलवाने को राजी नहीं हूं।

अगर मैं उस गीत को लिखता तो गीत अभी थोड़ा और आगे जाता। मैं उसे वापस लौटा दूंगा, क्योंकि प्रेयसी भीतर से कहेगीः जिसे अभी तू का पता है, उसे मैं का भी पता है; अन्यथा तू का भी पता नहीं हो सकता। लौट जाओ, प्रेम के घर में दो नहीं बन सकते हैं। और मेरा गीत आगे चला जाता है। वह प्रेमी लौट गया और फिर कभी नहीं आया। क्योंकि न मैं रहा, न तू। और तब प्रेयसी उसके पास आ गई उसे खोजती हुई।

प्रेम के द्वार पर अहंकार प्रवेश नहीं कर सकता। और हमारा सब प्रयास हमारा अहंकार है। मैं कर रहा हूं, मैं कर रहा हूं पूजा, मैं कर रहा हूं प्रार्थना, मैं फेर रहा हूं माला, मैं जाता हूं मंदिर, मैं पढ़ता हूं शास्त्र, मैं करता हूं उपवास, मैं कर रहा हूं यह सब--और इन सब करने से मेरा मैं और मजबूत होता चला आ रहा है। यह मैं जितना मजबूत हो जाएगा, उतने परमात्मा के द्वार बंद हो जाएंगे।

परमात्मा का सूरज प्रतिक्षण, प्रति घर के बाहर खड़ा है। जो अप्रयास में हैं उनके द्वार खुल जाएंगे। क्योंकि कई बार हमारे प्रयास ही सारी नासमझी कर देते हैं। कभी आपने खयाल किया है जिंदगी में और भी कुछ चीजें हैं जो आपके प्रयास से नहीं आ सकतीं। अगर किसी को रात नींद न आती हो तो क्या प्रयास से नींद आ सकती है? क्या कोशिश करने से कभी नींद आ सकती है? जितनी कोशिश करेंगे, नींद उतनी मुश्किल हो जाएगी। क्योंकि कोशिश नींद की बिल्कुल विरोधी है। नींद है विश्राम, कोशिश है श्रम। तो जितनी कोशिश करेंगे, नींद लाने की करवट बदलेंगे, उठेंगे, यह करेंगे, वह करेंगेः जितनी कोशिश करेंगे, उतनी ही ज्यादा नींद मुश्किल हो जाएगी।

एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञनिक था। एक नींद का मरीज उसके पास गया जिसे नींद न आती थी। अनिद्रा की बीमारी थी। उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः तुम कोई फिकर न करो। किस चीज का धंधा करते हो? उस आदमी ने कहाः मैं भेड़ों को पालता हूं, उनकी ऊन को बेचता हूं। भेड़ों को बेचता हूं, भेड़ों का ही मेरा धंधा है। उस मनोवैज्ञानिक ने कहाः तब तुम एक काम करो, नींद लाने के लिए रात को आंख बंद कर लो और समझो की भेड़ों की कतार खड़ी है। तुम भेड़ों की गिनती करो। करते ही चले जाओ, एक से लेकर गिनती हजार, दो हजार, तुम्हें गिनती करते-करते अपने आप नींद आ जाएगी। वह आदमी गया और दूसरे दिन वापस लौटा और उसने आकर मनोवैज्ञानिक की गर्दन पकड़ ली। उसने कहाः तुमने मुझे बड़ी मुसीबत में डाल दिया। भेड़ों का कोई अंत ही न हुआ और सुबह हो गई। वैसे तो कभी-कभी मैं थोड़ा-बहुत सो भी लेता था, आज तो नींद असंभव हो गई।

प्रयास करता रहा भेड़ों को गिनने का। मनोवैज्ञानिक ने सोचा होगा चित्त हो जाएगा एकाग्र तो नींद आ जाएगी। लेकिन जहां इफर्ट है, जहां चेष्टा है; वहां तनाव है। और तनाव नींद के विरोध में है। तनाव से नींद नहीं आ सकती। नींद कभी आप अपने श्रम से लाए हैं आज तक? नहीं, बल्कि जब आप निढाल हो जाते हैं थक कर, कोई श्रम करने का सवाल नहीं रह जाता, तब आप पाते हैं कि नींद उतर आई। ठीक ऐसा ही आगमन होता है परमात्मा का भी।

जब आपके सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं, जब आपकी सारी दौड़ व्यर्थ हो जाती है, और आप रुक जाते हैं, ठहर जाते हैं, छोड़ देते हैं सब--उसी क्षण आप पाते हैं कि एक अदभुत घटना घटित हो गई है, कोई ऊपर से

उतर आया है। और आपके सारे प्राणों को उसने घेर लिया है। इसे थोड़ा देखें, करें। इस संबंध में बात करने से बहुत कुछ नहीं हो सकता है।

एक मित्र पूछते हैं कि क्या निरंतर जागरूक रहना चाहिए, निरंतर सचेत रहना चाहिए, होश से रहना चाहिए?

अगर आप बहुत चेष्टा करेंगे होश से रहने की तो आप निरंतर होश से नहीं रह सकते। क्योंकि हर चेष्टा थक जाती है एक सीमा पर। और जब थक जाती है तो समाप्त हो जाती है। अगर होश से रहने का बहुत इफर्ट किया, बहुत कोशिश की तो फिर चौबीस घंटे होश से नहीं रह सकेंगे। क्योंकि हर श्रम थकता है और तब विश्राम करना पड़ता है। लेकिन अगर बहुत सरलता से और सहजता से होश से रहने क ा खयाल किया तो चौबीस घंटे होश से रहा जा सकता है--सतत। और जब सतत होश से रहेंगे तभी, तभी वह घटना घट सकती है--सतत जागे हुए रहेंगे।

एक छोटी सी घटना कहूं उससे शायद खयाल में बात आ जाए।

क्योंकि बातें बारीक हैं, घटनाएं थोड़ी स्थूल होती हैं और इशारा बन सकती हैं। एक छोटे से गांव में गांव के बाहर एक बहुत प्राचीन मंदिर था। उस मंदिर में बहुत पुजारी थे। एक दिन सुबह-सुबह एक पुजारी ने उठ कर शेष पुजारियों से कहाः रात मैंने सपना देखा है, और सपने में मुझे दिखाई पड़ा है कि भगवान आज हमारे मंदिर में आने को हैं। यह बड़ी अनहोनी घटना थी। क्योंकि भगवान कभी किसी मंदिर में नहीं गया है। सारे पुजारी उत्सुक हो गए। हो सकता है सपना सच हो और भगवान आने को हो।

उन्होंने मंदिर को धोया और पोंछा। उन्होंने मंदिर को सजाया और संवारा। उन्होंने मंदिर में सुगंधियां छिड़कीं, धूप-दीप जलाए। सारे मंदिर को अतिथि की तैयारी के लिए तैयार किया। जगत का राजा ही आने को था! लेकिन दोपहर हो गई और उस राजा के आगमन की कोई खबर न मिली। और सांझ आ गई और उस राजा के आने की कोई खबर न मिली। और रात पड़ गई, सूरज डूब गया और रात का अंधेरा घिर गया और उस राजा का कोई भी पता न था। वे थक गए और उन्होंने कहाः होगा सपना झूठा, सपने कब सच हुए हैं! दिन भर के श्रम से वे थक गए थे और द्वार बंद करके सो गए। थोड़ी देर में दीये बुझ गए, तेल चुक गया। थोड़ी देर में जलाई गई धूप समाप्त हो गई, प्रकाश विलीन हो गया। अंधेरे में वह मंदिर डूब गया।

आधी रात गए एक रथ राजपथ से उस मंदिर की पगडंडी पर मुड़ा। जोर से पहियों की आवाजें आने लगीं। राजा के घोड़ों की टापें सुनाई पड़ने लगीं। नींद में एक पुजारी को लगा, शायद कोई आवाज होती है तो उसने कहाः मित्रो उठो, शायद वह राजा आ गया जिसकी हम प्रतीक्षा करते थे। रथ की आवज सुनाई पड़ती है। लेकिन किसी दूसरे पुजारी ने कहाः सो जाओ, गड़बड़ मत करो, नींद मत तोड़ो। बादल की आवाज होगी। कहां इस अंधेरी रात में, कहां रथ, कहां का राजा--सब सपना है, सब झूठा है। बादल की आवाज है, सो जाओ। वे फिर सो गए।

रथ द्वार पर आकर रुका। वह राजा जिसकी चिरंतन से प्रतीक्षा थी उतरा, दरवाजे पर उसने दस्तक दी। उसके पद-चिह्न सुनाई पड़े। द्वार पर उसने भड़भड़ाया, आवाज हुई। फिर किसी की नींद थोड़ी टूटी होगी। आधी नींद में उस पुजारी ने कहाः मालूम होता है वह आ गया जिसके लिए हम प्रतीक्षा में थे। द्वार कोई

खटखटाता है। लेकिन फिर किसी सोए हुए ने कहाः चुप रहो, नींद मत तोड़ो बार-बार। हवा के झोंके होंगे, सपने सपने हैं। कौन राजा कब आता है? फिर वे सो गए।

राजा वापस लौट गया। सुबह जब वे उठे और द्वार खोला तो धक से रह गए उनके प्राण। जरूर रथ द्वार तक आया था। कच्ची मिट्टी पर रथ के पैरों के चिह्न थे, रथ के चाक बने थे। सीढ़ियों की धूल पर राजा के पैरों के चिह्न थे, वे बैठ कर सीढ़ियों पर रोने लगे। मैं भी सुबह-सुबह उस मंदिर की तरफ निकला था। उन पुजारियों को सीढ़ियों पर बैठे रोता देखा तो मैंने पूछाः क्या हो गया? कैसे रोते हो? उन्होंने कहाः अवसर हम चूक गए। जिसकी प्रतीक्षा थी वह आया था, लेकिन हमारे द्वार बंद थे।

मैंने उनसे कहाः जो चौबीस घंटे जागा हुआ नहीं है उसके द्वार बंद ही रहेंगे जब भी वह राजा आएगा। उसके आने की कोई घड़ी-मुहूर्त, कोई टाइम-टेबल तय तो नहीं है। वह कब आएगा इसका कोई पता नहीं है? चौबीस घंटे ही जागा हुआ चित्त चाहिए। शांत और निर्मल, ताकि जब भी वह आए द्वार बंद न पाए। उसके आने की कोई घड़ी-मुहूर्त तय होता, रास्ते के किनारे बैठने वाला ज्योतिषी अगर कुछ बता सकता तो आसान हो जाती बात। लेकिन नहीं, उसके आगमन का कोई निश्चय नहीं है। प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा में किसी भी क्षण वह आ सकता है।

तो चित्त चाहिए सतत प्रतीक्षारत। चित्त चाहिए सतत दीये से जला हुआ। चित्त चाहिए सतत अतिथि के लिए तैयार। और सतत जो तैयार है, वही तैयार है। क्योंकि ऐसा हो ही कैसे सकता है कि एक आदमी तेईस घंटे तो बेहोश रहे और एक घंटा होश में आ जाए। यह नहीं हो सकता। यह कैसे हो सकता है, एक आदमी तेईस घंटे पागल रहे, एक घंटा गैर-पागल हो जाए? यह कैसे हो सकता है कि तेईस घंटे कोई बीमार रहे और घंटे भर को रोज स्वस्थ हो जाए? यह नहीं हो सकता।

चेतना एक अविच्छिन्न धारा है, एक कंटीन्यूटी है। ऐसा नहीं हो सकता कि इस हिमालय से गंगा निकले और काशी के घाट पर आकर पवित्र हो जाए, उसके पीछे अपवित्र रही हो। फिर काशी के घाट के आगे फिर अपवित्र हो जाए और काशी के घाट पर पवित्र हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता। गंगा एक अविच्छिन्न धारा है। अगर काशी के घाट पर पवित्र है तो वह पहले भी पवित्र रही हो तभी पवित्र हो सकती है, और फिर आगे भी पवित्र रहेगी। यह नहीं हो सकता कि वह धारा थोड़ी देर को पवित्र हो जाए, फिर अपवित्र हो जाए।

यह नहीं हो सकता है कि मैं तेईस घंटे क्रोध में और चिंता में, दुख में और अंधकार में जीऊं और फिर एक घंटे मंदिर में जाऊं और शांत हो जाऊं और जाग्रत हो जाऊं। यह नहीं हो सकता। मंदिर की सीढ़ियों पर जो चढ़ेगा वही तो मंदिर के भीतर प्रवेश करेगा, वही गंगा तो मंदिर के भीतर जाएगी। तो मंदिर के बाहर जो अपवित्र था वह मंदिर के भीतर पवित्र कैसे हो जाएगा? कोई मंदिर जादू थोड़े ही कर सकेगा! चेतना मेरी जिस भांति की है मंदिर के बाहर, वही मंदिर के भीतर भी होगी। अगर मैं निरंतर बदलता हूं तो ही मैं बदलता हूं। अगर मेरी चेतना की धारा सतत बहती है, पवित्र होती है तो ही मैं बदलता हूं। अन्यथा बदलाहट नहीं हो सकती।

मैंने सुना है कि एक धनपति मरने के करीब था। उसकी मृत्यु आ गई थी। धनपतियों को कभी विश्वास तो नहीं होता कि उनकी मृत्यु आएगी, लेकिन फिर भी आती है। गरीब आदमी तो दिन-रात प्रतीक्षा करता है मौत की। धन... धनपति तो उसे छिपाए रहता है धन की आड़ में। लेकिन एक न एक दिन वह दीवाल को तोड़ देती है और सामने खड़ी हो जाती है। और तब पता चलता है कि धन कोई मित्र न था। उसकी भी वैसी ही हालत हो गई थी।

आज दिखाई पड़ रहा थाः सब उसके पास था, सब धन था उसके पास। लेकिन मौत से बचने का कोई उपाय न था। जिस पैसे को उसने प्राणों से भी कीमती जाना था, वह पैसा आज किसी भी तरह साथ देने को तैयार न था। खाट पर पड़ा था, मरने की प्रतीक्षा पल-पल थी। चिकित्सकों ने कहाः बचेगा नहीं। सांझ होने को थी। सूरज ढल गया और घर में अंधेरा उतर आया था। और मरणासन्न व्यक्ति के घर में कौन दीया जलाए? अंधेरा पड़ा था वह घर। सारे घर के लोग खाट के आस-पास बैठे थे।

उस धनपति ने आंखें खोलीं और अपनी पत्नी से पूछाः मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी ने सोचा, जीवन में यह पहला मौका है कि शायद उसे अपने लड़कों पर प्रेम आया है। क्योंकि जिसे पैसे पर प्रेम है, उसे और किसी से कभी प्रेम नहीं होता है। शायद प्रेम ने आज आकांक्षा जाहिर की है। पत्नी खुश हुई। उसने उसके पैरों पर हाथ रखा और कहाः आप निश्चिंत रहें, आपके सिर के पास ही आपका बड़ा लड़का बैठा है। उस धनपति ने पूछाः और उससे छोटा, वह भी मौजूद था। और उससे छोटा? वह भी मौजूद था। उसके पांच लड़के थे। उसने कहाः सबसे छोटा? उसकी पत्नी ने कहाः वह भी मौजूद है। आप निष्फिकर(42 : 42) शांत रहें, सब मौजूद हैं। वह धनपति मरणासन्न उठ कर बैठ गया और उसने कहाः इसका क्या मतलब! फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है? भूल भरी थी वह बात कि वह प्रेम से किसी को याद कर रहा था। जीवन भर जिसकी चेतना पैसे के इर्द-गिर्द घूमी हो, मौत के क्षण में भी प्रेम के इर्द-गिर्द नहीं घूम सकती है। चेतना एक अविच्छिन्न धारा है, एक कंटीन्युअस... उसमें कहीं बीच-बीच में अवरोध नहीं हैं।

तो जागना है तो सतत ही जागना है। शांत होना है तो सतत ही शांत होना है। प्रेम से भरना है तो सतत ही प्रेम से भरना है। यह कोई खंड-खंड में किया जाने वाला काम नहीं है। यह कोई ऐसा काम नहीं है कि थोड़ी देर मैं प्रेम से भर जाऊं और फिर देख लूंगा जो कुछ होना है। फिर दुनिया जैसी चलेगी, चलेगी। ऐसा नहीं हो सकता। जीवन बदलता है तो आमूल बदलता है, टुकड़ों में जीवन नहीं बदलता। क्योंकि जीवन के कोई टुकड़े नहीं है। जीवन एक अखंड, जीवन एक पूर्ण चीज है--इकट्ठी। उसमें अलग-अलग खंड नहीं हैं। जीवन के भवन में अलग-अलग कक्ष नहीं हैं। अलग-अलग कमरे नहीं हैं। जीवन इकट्ठा है और सतत है।

इसलिए जिन मित्र ने पूछा है कि "क्या हम सतत ही शांत, जागरूक रहें?"

निश्चित ही। अगर सत्य और परमात्मा की दिशा में कोई भी अनुभव होना है, तो वह जो सतत जागा हुआ है, सतत प्रेम से भरा हुआ है, सतत अहंकार-शून्य है, वही। और केवल वही उसको पाने का हकदार हो सकता है।

और बहुत से प्रश्न हैं, उन सबके उत्तर संभव नहीं हो पाएंगे। इसलिए नहीं कि उनके कोई उत्तर नहीं हैं। जो भी प्रश्न होगा अपने जन्म के साथ ही अपने उत्तर को भी पैदा कर लेता है। कोई प्रश्न बिना उत्तर के नहीं है। ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता जिसका उत्तर न हो। लेकिन दूसरे का उत्तर आपके प्रश्न का उत्तर बनेगा या नहीं यह नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न आपका है, उत्तर मेरा है। यह बड़ा फासला हो गया। यह इतनी बड़ी दूरी हो गई कि जरूरी नहीं कि यह दूरी पार होगी, बीच में ब्रिज बन सकेगा। प्रश्न आपका है, उत्तर मेरा, यह बड़ी फासले की बात हो गई, यह बहुत डिस्टेंस हो गया। तो जरूरी नहीं कि मेरा उत्तर आपका उत्तर बने। बन नहीं सकता। बहुत कठिनाई है। आप आप हैं, मैं मैं हूं। कैसे कोई सेतु जुड़ेगा? तो फिर मैं क्यों यह व्यर्थ मेहनत करता हूं और आपके प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूं?

इसलिए नहीं कि मेरे उत्तर आपके उत्तर बन जाएं, बल्कि इसलिए कि आपको यह खयाल पैदा हो जाए कि कोई प्रश्न बिना उत्तर के नहीं है और आप अपने उत्तर की खोज में निकल सकें। इतना खयाल भर मेरी बात से आपको आ जाए। मेरे उत्तरों को मान लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। जरा भी जरूरत नहीं है। इतना भर खयाल आपको आ जाए, इतनी भर दिशा आपको मिल जाए, इतना भर धक्का आपको मिल जाएकि प्रश्न हैं, तो उत्तर हो सकते हैं। बस इतनी ही बात खयाल में आ जाए तो मेरा श्रम पूरा हो जाता है।

मैं नहीं चाहता कि मैं आपको उत्तर दूं। मैं तो चाहता हूंः आप अपने उत्तर को खोजें। लेकिन शायद आप प्रश्न पूछते-पूछते निराश हो गए होंगे और आपने उत्तर की खोज बंद कर दी होगी। इसलिए इतनी मैंने बात की। निराश होने का कोई भी कारण नहीं है। खोदें जाएं अपने भीतर। जिस चित्त ने प्रश्न पैदा किया है, वह चित्त उसका उत्तर भी पैदा करने में समर्थ है।

आप हैरान होंगे, प्रश्न कठिन हैं, उत्तर हमेशा सरल हैं। प्रश्न पूछना ही असली बात है, उत्तर तो बहुत आसान है। लेकिन न तो हम प्रश्न पूछते हैं और न उत्तर खोजते हैं। और जो प्रश्न हम पूछते हैं वे भी करीब-करीब उधार होते हैं, वे भी अपने नहीं होते; वे भी सुने-सुनाए होते हैं, वे भी किताबों से सीखे होते हैं, वे भी हमारे नहीं होते। और इसलिए जब हमारा प्रश्न ही न हो तो हमारा उत्तर कैसे हो सकता है?

तो अंतिम निवेदन यह हैः अपना प्रश्न खोजिए। बड़ी उपलब्धि है अगर आप अपने जीवन में उठने वाले प्रश्नों को खोज पाएं। बंधे-बंधाए, रटे-रटाए, सुने-सुनाए प्रश्न मत पूछिए। उनका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि वे आपके प्रश्न नहीं हैं इसलिए कोई भी उत्तर दिया जाए, कोई भी उत्तर मिल जाए, उससे आपको कोई तृप्ति न होगी। वह वैसा ही है जैसे बिना प्यासे आदमी को हम पानी पिला दें। उससे और घबड़ाहट पैदा होगी, उससे कोई लाभ नहीं होगा। प्यास अपनी होनी चाहिए, सच्ची होनी चाहिए।

प्रश्न खोजें, पहली बात। और फिर शांत, मौन होकर उस प्रश्न को अपने चित्त में छोड़ दें और मौन हो जाएं। जल्दी उत्तर देने की कोशिश न करें। क्योंकि अगर जल्दी उत्तर देने की कोशिश की तो वह उत्तर भी कहीं का सीखा हुआ हो जाएगा। वह आपके भीतर से नहीं आएगा। स्मृति उत्तर दे देगी। अगर मैं आपसे पूछूं, ईश्वर है? आप अपने भीतर देखें, फौरन उत्तर आ जाएगा--हां, है। किसी का उत्तर आ जाएगा--नहीं है। ये झूठे उत्तर हैं, ये सीखे हुए उत्तर हैं।

अगर भीतर कोई उत्तर न आए तो समझना कि अब स्थिति आई कि उत्तर मेरा मिल सकता है। ये सीखे हुए उत्तर हैं। इसलिए परख रखना हमेशा भीतर कि यह कोई सीखा हुआ उत्तर तो नहीं आ रहा है। ईश्वर है, यह मुझे सिखा दिया गया बचपन से। मुझे पता नहीं है। और आज उत्तर उठता है--ईश्वर है, यह झूठा उत्तर है। बिल्कुल झूठा है। इस झूठे उत्तर से कुछ होने वाला नहीं है।

तो पहले तो झूठे उत्तर को विदा कर देना--दूसरे नंबर की बात। पहले नंबर की बात, उधार प्रश्न कभी जीवन में पूछना मत। उनका कोई मूल्य नहीं है, अपना प्रश्न! दूसरी बात, उधार उत्तर से तृप्त मत होना, उससे कोई हल नहीं है। उसे विदा कर देना। सब उत्तर विदा कर देना। अपना प्रश्न अकेला रह जाए भीतर, जलते हुए अंगारे की तरह।

और कोई प्रश्न... कोई उत्तर स्वीकार मत करनाः जो स्मृति दे, जो हमने सीख लिया, लर्निंग कर ली जिसकी। तब वह अंगार की तरह प्रश्न प्राणों में छिदता चला जाएगा। वह तीर की तरह भीतर घुसने लगेगा। और एक घड़ी आएगी कि आपकी आत्मा उत्तर देगी। वही उत्तर आपके जीवन में अर्थपूर्ण होगा। वही उत्तर आपके जीवन को बदलने वाला होगा।

प्रश्न के साथ जीना एक कला है। जल्दी से उत्तर दे देना कोई कला नहीं है। प्रश्न के साथ जीने की जरूरत है। जो शांति से अपने प्रश्न को बीज की तरह अपने हृदय में छिपा लेता है, और जीए चला जाता है--वह जरूर, जरूर एक दिन उत्तर को उपलब्ध होता है।

एक अंतिम बात और चर्चा को मैं पूरी करूंगा।

मनुष्य के जीवन में शायद सबसे जरूरी और महत्वपूर्ण प्रश्न इसके सिवाय कुछ भी नहीं हैकि मैं कौन हूं? लेकिन इतने प्रश्न आए हैं, किसी ने भी यह नहीं पूछा। पूरे मुल्क में मैं घूमता हूं, अब तक मुझे वह आदमी नहीं मिला जो पूछता होः मैं कौन हूं? कोई पूछता है, ईश्वर क्या है? इसकी परिभाषा दीजिए, डेफिनेशन दीजिए। क्या मतलब है आपको ईश्वर से? कोई पूछता है, स्वर्ग और नरक होते या नहीं? कोई पूछता है, परद्रव्य क्या है? कोई कुछ, कोई कुछ? लेकिन बुनियादी प्रश्न जो आदमी के भीतर होना चाहिए वह कोई भी नहीं पूछता। शायद हमने यह मान ही लिया है कि हम अपने को जानते हैं इसलिए पूछने की जरूरत क्या है?

और बड़े आश्चर्य की बात यह है कि आदमी स्वयं को नहीं जानता है।

इधर तीन दिनों की चर्चा मेरी इसी दिशा में थी कि आपके भीतर शायद यह प्रश्न पैदा हो जाए कि मैं कौन हूं? शायद कोई पूछे। तो अंतिम एक घटना की बात करके मैं चर्चा पूरी कर दूंगा। शायद उस घटना से आपके भीतर प्रश्न गूंजता रह जाए। और किसी दिन आपके प्राण उसके उत्तर पाने में समर्थ हो सकें। वही घड़ी धन्यता की घड़ी होती है।

एक भिखारिन, एक बूढ़ी भिखारिन एक मेले से भीख मांग कर वापस लौटती थी। थक गई थी, बूढ़ी स्त्री थी। एक झाड़ के नीचे घनी छाया में सो गई। दोपहर थी। राह से निकलते हुए किसी एक मसखरे आदमी ने उस बूढ़ी स्त्री के सारे कपड़े कैंची से काट डाले, उसके चेहरे पर कोई स्याही पोत दी। सांझ होते-होते उसकी आंख खुली, वह करीब-करीब अर्धनग्न थी। हाथ-पैर काले थे, कपड़े पहचान में न आते थे। उसकी पोटली, उसकी भिक्षा का पात्र वे सब नदारद थे। वह हैरान हो गई! उसने अपने से पूछाः मैं कौन हूं? क्योंकि मैं जो सोई थी, उसके कपड़े दूसरे थे। मैं जो भिखारिन थी, उसके पास पोटली थी, पैसे थे--वे सब नहीं हैं। हाथ-पैर नंगे हैं, मैं तो नंगी न थी! वह हैरान हो गई कि मैं कौन हूं फिर? क्योंकि रोज अपने वस्त्रों में अपने को पहचान लेना बहुत आसान था, आज अपने वस्त्र नहीं थे तो कैसे पहचानती?

हम सब भी अपने को वस्त्रों से ही पहचानते हैं। वस्त्र न हो तो पहचानना मुश्किल हो जाए। नाम के वस्त्र हैं, पद के वस्त्र हैं, धन के वस्त्र हैं, प्रतिष्ठा के वस्त्र हैं। हमारी आइडेंटिटी क्या है? हमारे वस्त्र और हमारे चेहरे? हमारा ऊपर का जो ढंग है, वही हमारी पहचान है। उससे ही दूसरे हमको पहचानते हैं, उससे ही हम भी अपने को पहचानते हैं। दूसरे पहचानें वह तो ठीक, लेकिन हम भी उसी से अपने को पहचानते हैं।

अगर कल सुबह आप आईने के सामने खड़े हों और देखें कियह चेहरा, अरे यह तो बदल गया, यह तो दूसरा हो गया! तो आप भी घबड़ा जाएंगे और मन में प्रश्न उठेगा, मैं कौन हूं? चेहरा तो रोज बदल जाता है, लेकिन इतने धीरे-धीरे बदलता है कि आपकी आंखें उसे पहचान नहीं पातीं। लेकिन एकदम से कोई जादूगर आए और आपके चेहरे को दस साल आगे बदल दे तो सुबह उठ कर आपको मुश्किल हो जाएगी पूछने में कि मैं कौन हूं? अपने फोटो से मिलाएंगे, पाएंगे यह तो मैं नहीं हूं।

वह बूढ़ी भिखारिन भी दिक्कत में पड़ गई। उसने कभी अपने को नग्न नहीं देखा था। कौन अपने को कब नग्न देखता है? नंगी आज थी तो घबड़ा गई। सोचा कि चलूं किसी आईने में देख लूं। लेकिन पोटली तो नदारद थी, उसमें उसका आईना भी था।

आप कहेंगेः भिखारियों को आईने की क्या जरूरत? तो आप गलती में हैं। सम्राट ही अपने को देख कर खुश होते हों ऐसा नहीं हैं, भिखारी भी अपने को देख कर खुश होते हैं। कौन अपने को देख कर खुश नहीं होता है? आईना उसी पोटली में लेकिन चला गया था। पहचानना बड़ा मुश्किल था। क्या करे, कैसे जाने कि वह कौन है?

तो उसे खयाल आया अपने घर की तरफ की चले, उसके पास एक कुत्ता था। रोज वह तो उसे पहचान लेता था और दौड़ कर उसके आगे-पीछे पूंछ हिलाने लगता था। तो वहीं चली चले अपने झोपड़े पर, अगर कुत्ते ने पहचान लिया तो पक्का हो जाएगा कि मैं, मैं ही हूं। और अगर कुत्ता न पहचान पाया तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। भागी वह घर की तरफ, रात हो गई थी। कुत्ते ने भी उसे हमेशा कपड़ों में देखा था। नग्न उसने कभी उसे देखा नहीं था, कुत्ता घबड़ा गया और भौंकने लगा। वह भिखारिन बुढ़िया बड़ी दिक्कत में पड़ गई। वह उस द्वार पर खड़ी होकर सोचने लगी, बड़ी मुश्किल हो गई! जो मैं हूं, अगर मैं नहीं हूं तो फिर मैं कहां हूं?

हर आदमी अपने घर के सामने जाकर अगर पूछेगा अपने से तो इसी मुश्किल में पड़ जाएगा कि मैं कौन हूं? और कहां हूं? इसी प्रश्न के साथ अपनी इस चर्चा को मैं समाप्त कर देता हूं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। परमात्मा करे इतनी ही शांति और मौन से आपके भीतर जो है उसे आप सुन सकें। अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं पुनः प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सातवां प्रवचन

जीवन में प्रेम का साक्षात्कार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

एक राजमहल के द्वार पर बहुत भीड़ लगी हुई थी। सुबह से भीड़ का इकट्ठा होना शुरू हुआ था, अब दोपहर आ गई थी। और लोग बढ़ते ही गए थे। जो भी आकर खड़ा हो गया था, वह वापस नहीं लौटा था। सारे नगर में उत्सुकता थी, कुतूहल था कि राजमहल के द्वार पर क्या हो रहा है? वहां एक बड़ी अघटनीय घटना घट गई थी। सुबह ही सुबह एक भिखारी ने अपना भिक्षा पात्र राजा के सामने फैलाया था। भिखारी तो बहुत होते हैं, लेकिन भिखारी का कोई चुनाव नहीं होता, कोई शर्त नहीं होती। उस भिखारी की शर्त भी थी।

उसने राजा से कहा थाः मैं भिक्षा एक ही शर्त पर लेना स्वीकार करता हूं, और वह शर्त यह है कि मेरा भिक्षापात्र यदि पूरा भर सको तो ठीक है, अन्यथा मैं दूसरे द्वार पर चला जाऊंगा। स्वभावतः राजा को यह बात सुन कर बहुत हंसी आ गई थी। राजा के पास क्या कमी थी जो एक भिखारी के पात्र को न भर सके। और उसने अत्यंत अभिमान से भर कर उस भिक्षु को कहा था--जब ऐसी ही शर्त है तो तेरे भिक्षापात्र को अन्न से न भरूंगा। स्वर्ण अशर्फियों से भरूंगा। लेकिन वह भिखारी बोला कि पहले मेरी शर्त ठीक से समझ लें, पीछे कहीं पछताना न पड़े। मैं चाहता हूं कि मेरा पूरा भिक्षापात्र भरें, अधूरा पात्र भरा हुआ लेकर मैं न जाऊंगा। राजा ने अपने वजीर को कहाः जाओ स्वर्ण अशर्फियों से इसके भिक्षापात्र को भर दो।

स्वर्ण अशर्फियां लाई गईं, भिक्षु के पात्र में डाली गईं। लेकिन बड़ी हैरानी की बात हो गई। पात्र में डाली गईं स्वर्ण-मुद्राएं न मालूम कहां खो गईं, पात्र खाली का खाली रहा। फिर तो एक कठिनाई खड़ी हो गई थी। वजीर दौड़-दौड़ कर मुद्राएं लाते रहे, और पात्र भरा जाता रहा। लेकिन भर भी नहीं पाता था कि वह खाली हो जाता था। दोपहर हो गई। सारे नगर में उत्सुकता भर गई। राजधानी के लोग द्वार पर इकट्ठे हो गए। ऐसा न दिखाई पड़ता था कि राजा उसके पात्र को भर पाएगा। राजा भी घबड़ाया।

उसने बड़े युद्ध जीते थे। जीवन में बड़ी लड़ाइयां ली थीं। लेकिन ऐसी लड़ाई कभी उसके सामने खड़ी न हुई थी। विजय की कोई संभावना न थी, उस भिक्षु से हारना ही पड़ेगा। लेकिन अंतिम क्षण तक राजा भी कोशिश करने को आबद्ध था। उसने अपनी सारी तिजोड़ियां खाली करवा दीं। सांझ होने को आ गई, सूरज ढलने लगा। और राजा की हार भी निश्चित हो गई। उसकी तिजोड़ियां खाली हो गई थीं, लेकिन भिक्षु का पात्र अभी भी खाली था। अंततः वह उसके पैरों पर गिर पड़ा।

सम्राट उस भिखारी के पैरों पर गिर पड़ा और उससे कहा, क्षमा कर दें मुझे। अभिमान में मुझसे भूल हो गई। मैं नहीं भर सकूंगा इस पात्र को, आप किसी और द्वार पर चले जाएं। लेकिन जाने के पहले मुझ पराजित को एक छोटी सी बात बताते जाएं। अगर बता देंगे वह बात, तो मैं समझूंगा मैं क्षमा कर दिया गया। छोटा सा प्रश्न मेरा यह है कि यह भिक्षापात्र कैसे जादू से बना है? किस मंत्र से बना है? क्या है रहस्य इसका? क्या है मिस्टरी? भरता क्यों नहीं है यह पात्र?

उस भिक्षु ने कहाः कोई रहस्य नहीं, कोई मंत्र नहीं, कोई जादू नहीं। मैं एक मरघट से निकलता था, वहां आदमी की खोपड़ी पड़ी मिल गई। उसी से मैंने इस पात्र को बना लिया है। मैं खुद ही हैरान हूं कि यह भरता

क्यों नहीं है? फिर पीछे मुझे पता चला कि आदमी की खोपड़ी कुछ ऐसी है कि वह कभी भी नहीं भरती। इसलिए यह पात्र भी नहीं भरता है।

इस कहानी से इसलिए मैं अपनी बात को शुरू करना चाहता हूं, क्योंकि मैं उसी शिक्षा को ठीक शिक्षा मानता हूं जो आदमी की खोपड़ी को भरने का उपाय बता सके। लेकिन आज तक हमने मनुष्य को जो शिक्षा दी है, उससे मनुष्य का हृदय भरता नहीं है। बल्कि और खाली हो जाता है। जैसे राजा हार गया था उस भिखारी के सामने, ऐसे ही मनुष्य के कभी न भरने वाले मन के सामने आज तक की शिक्षा भी हार गई है।

अब तक हम मनुष्य को इस भांति निर्मित नहीं कर पाए कि वह तृप्त हो सके जीवन से; संतुष्ट हो सके; भरा-पूरा हो सके; फुलफिलमेंट मिल सके उसे जीवन में। वह यह कह सके कि जीवन में मैं खाली नहीं रहा, भर गया हूं। ऐसी शिक्षा हम आज तक विकसित नहीं कर पाए। इसलिए सारी मनुष्यता दुखी और पीड़ित है।

इसी संबंध में थोड़ी सी बातें तुमसे मैं कहूंगा।

तुम भी उसी रास्ते पर हो जिस रास्ते पर करोड़-करोड़ जन तुमसे भी आगे निकल चुके हैं, दुखी और पीड़ित। और जीवन भर के अभाव के बाद, खालीपन के बाद भी उनका भिक्षापात्र खड़ा रहता है, हाथ फैले रहते हैं। खाली पात्र जीवन भर भरने पर भी नहीं भर पाता। और फिर, और फिर आ जाती है मौत। जीवन भर दुख, दारिद्रय, पीड़ा, अभाव, अशांति, अतृप्ति और फिर मौत। ऐसी यह कथा है, ऐसा यह रास्ता है। इसी रास्ते पर तुम भी एक यात्री हो। तुम्हारी यात्रा भी शुरू हो गई।

क्या तुम भी उन्हीं लोगों जैसे समाप्त हो जाओगी जैसे तुमसे पहले के यात्री समाप्त हुए हैं। या कि तुम एक भरा-पूरा जीवन, एक संतुष्ट और आनंद से भरा हुआ, जिसका पात्र भर जाए--ऐसा जीवन और व्यक्तित्व उपलब्ध कर सकोगी। मैं आश्चर्य करता हूं, क्या तुम्हें कभी इसका खयाल भी आया है या नहीं। लेकिन इसी संबंध में थोड़ी सी बातें मुझे तुमसे कहनी हैं। और इसके पहले कि ये बातें मैं तुमसे कहूंः यह समझ लेना जरूरी है कि अधिक लोग जीवन से खाली ही विदा हो जाते हैं। उनकी दौड़, उनका श्रम कुछ भी नहीं उपलब्ध कर पाता है।

जिस दिन सिकंदर मरा, शायद तुमने इतिहास की किताबों में यह बात न पढ़ी होगी। क्योंकि इतिहास लिखने वाले लोग जैसे जानबूझ कर वे बातें छोड़ देते हैं, जो कि लिखनी बहुत जरूरी है। और जो बातें लिखनी बिल्कुल जरूरी नहीं हैं, जिनसे केवल जहर फैलता है और आदमी का मन विषाक्त होता है, उन्हें बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया जाता है। आदमी की सामूहिक विक्षिप्तता का यह हिस्सा है।

सिकंदर जिस दिन मरा, जिस नगर में उसकी अरथी निकली, सारे लोग हैरान हो गए। लाखों लोग दूर-दूर से देखने इकट्ठे हुए थे। सिकंदर की जिंदगी भी देखने जैसी थी, और मौत भी। वह कोई साधारण जिंदगी न थी। वह कोई जिंदगी के किसी अंधेरे कोने में जीने वाला आदमी न था। बड़ी उसकी विजय की गाथाएं थीं। बड़े साम्राज्य उसने जीते। दूर-दूर तक उसका नाम, कीर्ति और यश की पताका बन कर फहराया। आकाश में उसका नाम लिखा हुआ था। पहाड़ों पर, पर्वतों पर, जमीन पर--सब तरफ सिकंदर का नाम था। वह आदमी मर गया था। लाखों लोग देखने इकट्ठे हो गए थे। वे सब हैरान थे लेकिन एक बात से... सिकंदर की अरथी के बाहर उसके दोनों हाथ लटके हुए थे!

अरथियों के बाहर कभी किसी के हाथ नहीं लटके होते हैं। सारा नगर परेशान था। पूछ रहा था एक-दूसरे से कि बात क्या है? सांझ होते-होते पता चला, सिकंदर ने मरने के पहले कहा थाः मेरे हाथ अरथी के बाहर रहने देना। ताकि लोग देख सकें, मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरी दौड़, मेरी विजय यात्राएं, मेरे युद्ध, मेरी

हिंसा, मेरी हत्याएं, मेरी क्रूरताएं कुछ भी नहीं ला सकीं। मैं एक खाली आदमी था, और खाली आदमी मर रहा हूं--इसे लोग देख सकें।

लेकिन इसे हम आज तक भी नहीं देख पाएं हैं। और मुझे शक है उस राजधानी में जिन लोगों ने वह हाथ अरथी के बाहर लटके देखे होंगे, वे भी शायद इस तथ्य को न देख पाए होंगे। हंसे होंगे, और कहे होंगेः बड़ी अदभुत सूझ है, और अपने घर चले गए होंगे। और अपनी दौड़ में लग गए होंगे। वे भी अपनी छोटी-मोटी विजय की यात्रा में लग गए होंगे।

आदमी ऐसा ही अंधा है। वह नहीं देख पाता चारों तरफ क्या हो रहा है। और उन्हीं भूलों को खुद भी दोहराए चला जाता है जिनको दूसरे लोग दोहरा रहे हैं। हो सकता है कि उसी भीड़ में से और सिकंदर पैदा हो गए होंगे। आदमी का अंधापन बहुत अदभुत है। उस शिक्षा को मैं शिक्षा कहता हूंः जो आदमी के इस अंधेपन को तोड़ दे, और जिंदगी को देखने की आंखें दे।

इंग्लैंड में आज से सौ और डेढ़ सौ वर्ष पहले तक चोरों को चौरस्तों पर खड़ा करके कोड़े मारे जाते थे, ताकि और लोग देख लें कि चोरी करनी बुरी बात है। उनको लहूलुहान कर दिया जाता, उनकी चमड़ी उखेड़ दी जाती। उन्हें नग्न चौरस्तों पर लटका कर, सारे शरीर पर कोड़े मारे जाते। खून चूने लगता उनके शरीर से और चमड़ी जगह-जगह से उखड़ जाती। और हजारों लोग आस-पास इकट्ठा होकर देखते। सोचा गया था यह कि जो लोग यह देखेंगे, वे फिर कभी चोरी न करेंगे।

लेकिन डेढ़ सौ वर्ष पहले इस प्रथा को वहां की अदालतों को उठा देना पड़ा। और तुम जान कर हैरान होओगे कि क्यों उठा देना पड़ा? उठा देना पड़ा इसलिए कि जब किसी चोर को इस तरह सजा दी जाती थी तो हजारों लोग देखने इकट्ठे हो जाते थे। और वे इतने तल्लीन हो जाते थे इस चोर को पिटते हुए देखते कि लोग तब तक दूसरे लोगों की जेब काट लेते थे। उन भीड़ों में इतनी जेबें कटने लगीं कि कानून को यह तय करना पड़ा कि इसका कोई मतलब नहीं है। लोग इतने अंधें हैं। एक चोर को सामने मारा जा रहा है, पीटा जा रहा है, नंगा किया गया है, खून बह रहा है। और उस भीड़ को देखने जो लोग इकट्ठे हुए हैं बाकी लोग, कुछ लोग उनकी जेबें काट रहे हैं। तब खयाल में आया कि आदमी इतना अंधा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

इसलिए मैं कहता हूंः सिकंदर के लटके हुए हाथ भी बहुत मुश्किल से किसी को दिखाई पड़े होंगे? और रोज सिकंदर मरते हैं, और रोज खाली हाथ जाते हैं। लेकिन हमको किसी को भी दिखाई नहीं पड़ते। और हम भी उसी यात्रा में सम्मिलित हो जाते हैं। उसी भ्रांत यात्रा में, झूठी यात्रा में। और हमारी शिक्षा भी, हमारा समाज, हमारा संस्कार, हमारी सभ्यता, हमारे शिक्षक, हमारे मां-बाप हमें उसी यात्रा में कुशल बनाने की कोशिश में लग जाते हैं।

हमारी सारी शिक्षा उसी इफिसिएंसी को देने के लिए है जिसमें हम इस यात्रा में कुशल सिद्ध हों। जब कि यह यात्रा ही भ्रांत और गलत है। इसी दौड़ में हम अग्रणी हो सकें, आगे हो सकें। इस दौड़ में हम पीछे न रह जाएं, प्रथम हो सकें--इसके लिए हम अपने बच्चों को तैयार करते हैं। और अगर ये दौड़ ही पूरी गलत है, तो इसमें आगे हो जाने का क्या मूल्य है? क्या अर्थ है? क्यों है यह दौड़ गलत? और क्यों इस दौड़ से मनुष्य के जीवन में संपूर्णता, शांति और संतोष उपलब्ध नहीं हो पाते हैं? कुछ कारण होंगे, कुछ बात होगी। कौन से कारण हैं?

सबसे पहला कारण यह हैः जो मनुष्य भी अपने से बाहर, अपने आनंद की खोज में लग जाता है, वह असमर्थ होकर ही रहेगा। असफल होकर ही रहेगा। उसे सफलता मिलनी संभव नहीं है। क्योंकि (14 : 46... अस्पष्ट(शायद-जीवन का)आनंद, जीवन की शांति, जीवन का सौंदर्य और सत्य...

न, बैठिए।

जीवन का जो भी महत्वपूर्ण है वह मनुष्य के भीतर से आविर्भूत होता है, बाहर से उपलब्ध नहीं होता। और हम सिखाते हैं बाहर, हम सिखाते हैं बाहर जाना। हम सिखाते हैं बाहर की यात्राएं, बाहर की उपलब्धियां। भीतर तो आदमी दरिद्र का दरिद्र रह जाता है, बाहर बहुत कुछ इकट्ठा कर लेता है। उस बाहर की इकट्ठी हुई संपदा का, उस साम्राज्य का कोई भी मूल्य नहीं है। क्योंकि जो दुख है, जो पीड़ा है, जो बेचैनी है, जो अशांति है--वह भीतर है। वह मनुष्य के भीतर है। वह मनुष्य की अंतर्रात्मा में है। अगर हम उसे वहां शांत और तृप्त होना सिखा सकें, तो ही कोई मनुष्य जीवन में सफलता के शिखर को उपलब्ध होता है।

एक होटल में एक संध्या कुछ मेहमान आमंत्रित थे। सात मंजिला मकान था वह। और सातवीं मंजिल पर बैठ कर वे मेहमान भोजन कर रहे थे। वे मेहमान, वे पच्चीस मेहमान किसी एक साधु के स्वागत के लिए बुलाए गए थे। वह साधु भी वहां मौजूद था। आधा भोजन हो पाया था। उस साधु की अत्यंत गंभीर और मीठी बातों को वे सुन रहे थे, और भोजन भी कर रहे थे। और तभी अचानक उस नगर में भूकंप आ गया।

अभी इस नगर में भूकंप आ जाए तो फिर मेरी बातें सुनने को यहां कौन रुकेगा? किसी को खयाल भी न आएगा यहां रुकने का। पता भी नहीं चलेगा, हमने कब भागना शुरू कर दिया है। भागना पहले शुरू हो जाएगा, खयाल पीछे आएगा कि मैं भाग रहा हूं। उस होटल के वे मेहमान भी भागे, सातवीं मंजिल पर थे।

नगर में भूकंप था, हाहाकार था, नीचे से आवाजें आ रही थीं, मकान गिर रहे थे, मकान में आग लग गई थी, और उपद्रव हो गए थे। वे भागे। छोटा सा संकरा दरवाजा था। क्योंकि आदमी दरवाजे भूकंप में भागने के लिए नहीं बनाता। भूकंप से भागने के खयाल से बनाए, तो दरवाजे ही न बनाए। खुली दीवालें रखे, ताकि भाग सके। आदमी तो सुविधा के लिए बनाता है, उसे पता भी नहीं कि भूकंप भी आते हैं।

वे भागे और दरवाजे पर रुक गए। भीड़ हो गई, संकरी सीढ़ियां थीं। जो उन मेहमानों को बुलाने वाला मेजबान था, वह भी भागा। लेकिन भीड़ थी तो उसने पीछे लौट कर देखा कि जिस साधु को हमने बुलाया था, जो प्रमुख अतिथि था, वह भी भाग गया है क्या? लौट कर देखा तो वह साधु अपनी कुर्सी पर ही बैठा हुआ है, आंख लेकिन उसने बंद कर ली है।

उस मेजबान को बड़ी हैरानी हुई! और एक चुनौती उसके मन में पैदा हुई, एक चैलेंज पैदा हुआ कि अगर यह साधु नहीं भाग रहा है, तो मैं भी क्यों भागूं? जो कुछ इसका होगा, वह मेरा भी हो जाएगा। और फिर यह भी क्या जरूरी है कि मैं भागूं, और बच जाऊं? सात मंजिल नीचे तक पहुंच पाऊं, यह भी क्या जरूरी है? और जहां मैं भाग रहा हूं, वहां भी तो मकान गिर रहे हैं। वहां भागने से भी क्या मतलब है? एक क्षण में बिजली की तरह ये बातें उसके मन में कौंध गईं होंगी। वह रुक गया, और साधु के पास बैठ गया।

थोड़ी देर, थोड़े क्षणों में भूकंप समाप्त हो गया। नगर ध्वस्त हो गया था। सब जगह शोरगुल था। रोना... रुदन था। उस साधु ने आंख खोली। जहां बात टूट गई थी, वहीं से उसने फिर बात शुरू कर दी। न तो उसने यह पूछा कि वे पच्चीस लोग कहां गए? न उसने यह कहा कि यह भूकंप आया, बहुत बुरा हुआ। न नीचे उठते हाहाकार की उसने कोई चर्चा की। वह तो भूकंप के आने से उसकी बात जहां टूट गई थी, उसने वहीं से फिर शुरू कर दी। उस अकेले आदमी के सामने।

लेकिन वह मेजबान बोलाः क्षमा करें, मुझे कुछ भी पता नहीं है कि भूकंप के पहले आप क्या कह रहे थे? इतनी बड़ी बात घट गई है कि मैं बिल्कुल अस्त-व्यस्त हो गया हूं। मेरा मन ठिकाने पर नहीं है, मेरे हाथ-पैर कांप रहे हैं। अभी उस बात को शुरू मत करें। मैं तो एक दूसरी बात आपसे पूछना चाहता हूंः यह जो भूकंप आया है, इसका क्या हुआ? इसके बाबत कुछ न कहेंगे? उस फकीर ने क्या कहा?

उस फकीर ने कहाः मेरे मित्र, भूकंप आया, निश्चित आया था। तुम भाग गए थे, तुम भाग रहे थे। और लोग भाग गए हैं, मैं भी भाग गया था। लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ भागा था। मैंने भी आंखें बंद कर लीं, और मैं भी भाग गया था। लेकिन तुम बाहर की तरफ भागे थे, मैं भीतर की तरफ आ गया था। तुम्हें पैरों से भागना पड़ा, मुझे चित्त से भागना पड़ा। और तुम जिस तरफ भागे, बिल्कुल नासमझ हो।

क्योंकि तुम जहां भाग रहे थे, वहां भी भूकंप था। तुम भूकंप से भूकंप में ही भाग रहे थे। तुम भूकंप के बाहर नहीं जा सकते थे। लेकिन मैं ऐसी जगह चला गया, जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंचते। मैं अपने भीतर भाग गया था। मैंने अपने भीतर एक ऐसा स्थल खोज लिया है, जहां बाहर का कोई कंपन कभी नहीं पहुंचता है। मैं वहीं चला गया था।

दो ही तरह की जीवन यात्राएं हैंः एक बाहर की तरफ, एक भीतर की तरफ।

जो बाहर की तरफ भागता है, वह ठीक से समझ ले, वह कभी उस स्थिति को उपलब्ध नहीं हो सकेगा--जिसे शांति कहें, संतोष कहें, आनंद कहें। क्योंकि जिस तरफ वह भाग रहा है, वहां भी भूकंप ही भूकंप है। जिस तरफ वह भाग रहा है, वहां मृत्यु के सिवाय और किसी चीज से मिलन न होगा।

लेकिन एक भीतर की तरफ भी यात्रा है। और ये दोनों यात्राएं विरोधी हैं। और इन दोनों यात्राओं की निष्पत्तियां, उपलब्धियां भी विरोधी हैं। बाहर की तरफ जो भाग रहा है, अंतिम परिणाम में मृत्यु से होगा मिलन उसका। भीतर की तरफ जो भागता है, अंतिम परिणाम में उसे उपलब्ध होता हैः जो अमृत है, जिसकी कभी मृत्यु नहीं होती। बाहर की तरफ जो भाग रहा है, वह ऐसी चीजें इकट्ठी कर लेगा जो छोड़नी पड़ेंगी। भीतर की तरफ जो भाग रहा है, वह उसको उपलब्ध हो जाता हैः जो शाश्वत है, जिसे कभी छोड़ना नहीं पड़ता। बाहर की तरफ जो भाग रहा है, वह जो कुछ भी उपलब्ध करेगा, उस उपलब्धि में दूसरों से छीनना पड़ेगा। क्योंकि बाहर की चीजें सड़कों पर पड़ी हुई नहीं मिलतीं, कोई न कोई उनका मालिक है।

अगर मैं धन इकट्ठा करूंगा तो दूसरे की जेब मुझे खाली करनी पड़ेगी। अगर मैं बड़ा मकान बनाऊंगा तो दूसरों के झोपड़े जमीन से मिला देने होंगे। और अगर मैं बहुत वस्त्र इकट्ठे कर लूंगा तो कुछ लोग जमीन के किसी कोने पर जरूर ही नंगे हो जाएंगे। बाहर की चीजें किसी से छीननी पड़ती हैं। और जब हम किसी से कुछ छीनते हैं, तो उसे दुखी कर जाते हैं। और जब मेरा सारा जीवन दूसरों को दुखी करने में व्यतीत होता हो तो यह संभव नहीं है कि मैं आनंदित हो जाऊं।

लेकिन भीतर के जगत में हम जो भी पाते हैं, उसे किसी से भी छीनना नहीं पड़ता। वह किसी दूसरे की मालकियत नहीं है, वह मेरी मालकियत है। उसे मुझे किसी को छीन कर गरीब नहीं बनाना पड़ता है। मेरी भीतर की उपलब्धि से कोई गरीब नहीं होता, लेकिन मैं समृद्ध जरूर हो जाता हूं। मेरी बाहर की समृद्धि से बड़े आश्चर्य की बात है; मैं तो समृद्ध नहीं हो पाता, लेकिन दूसरा जरूर गरीब हो जाता है।

ठीक-ठीक शिक्षा मनुष्य को भीतर की यात्रा पर गतिमान करती है। लेकिन आज तो हम सब बाहर की यात्रा पर चल पड़े हैं। हम जो भी सीख रहे हैं, जो भी पढ़ रहे हैं, वह सब बाहर ले जाने वाला है। और धीरे-धीरे हम उसमें दीक्षित हो जाएंगे। हमें यह बात ही भूल जाएगी कि भीतर भी हमारे कुछ था। हमें यह खयाल ही

भूल जाएगा कि हमारे अंतस में, हमारी आत्मा में भी कोई संपदा छिपी थी। कोई समृद्धि थी, कोई साम्राज्य था, कुछ पाने योग्य वहां भी था--यह हमें भूल ही जाएगा।

जिंदगी इतनी छोटी है, और उसके बीत जाने में पता भी नहीं चलता कब बीत गई। क्षण-क्षण रीत जाते हैं, और आदमी रोज-रोज मृत्यु के करीब पहुंच जाता है। शायद मरते क्षण खयाल आता हो कि जिंदगी तो व्यर्थ बीत गई, और मैं कुछ पा नहीं पाया। लेकिन तब उस खयाल का कोई उपयोग भी नहीं है।

काश, यह खयाल जीवन की शुरुआत में दिया जा सके। काश, ये विचार, यह संकल्प, यह चुनौती, यह आवाहन, यह आमंत्रण बहुत छोटे-छोटे बच्चों के हृदय में पैदा किया जा सके कि तुम्हारे जीवन की जो सर्वाधिक बहुमूल्य संपदा है, वह तुम्हारे भीतर है। उसे खोजने के रास्ते बाहर की दुनिया की खोज के रास्तों से बिल्कुल उलटे हैं। उसे पाने की विधियां, टेक्नीक और शिल्प बहुत दूसरा है। उसका गणित, उसकी इंजीनियरिंग अलग है। उसका विज्ञान अलग है।

अधूरी है हमारी जिंदगी आज। क्योंकि हम केवल बाहर, और बाहर की खोज करते हैं। विचार करते हैं, अनुसंधान करते हैं। अधूरी है यह जिंदगी, और भीतर सब खाली और रिक्त और एंप्टी रह जाता है। फिर यह भीतर का खालीपन बहुत सालता है, बहुत दुख देता है। जैसे-जैसे तुम बड़े होते जाओगी, वैसे-वैसे ये भीतर का दुख बड़ा होता जाएगा। वैसे-वैसे तुम्हारी समझ में आने लगेगा, भीतर तो मैं कुछ भी नहीं हूं। अच्छे वस्त्र हैं मेरे पास, अच्छा मकान है, रेडियो है, गाड़ी है, और सब कुछ है, लेकिन भीतर... ? भीतर मैं कुछ भी नहीं हूं। और भीतर का यह खालीपन इतना बड़ा है, यह भिक्षापात्र इतना बड़ा है कि बाहर की सारी समृद्धि भी इसे नहीं भर पाएगी। और तब, तब अंत में पराजय उपलब्ध होती है।

जीवन में विजय बहुत कम लोगों को उपलब्ध होती है। जब कि सबको उपलब्ध हो सकती थी। तुम भी विजयी हो सकती हो। लेकिन कुछ करना पड़ेगा, अन्यथा पराजय निश्चित है। और हमें दिखाई नहीं पड़ती यह पराजय, क्योंकि हमारे आस-पास भी सब पराजित लोग हैं। अगर इस कमरे में जितने लोग हैं, सभी एक बीमारी से बीमार हों जाएं तो फिर हमें पता नहीं चलेगा कि हम बीमार हैं। क्योंकि खयाल ही नहीं आएगा। सभी लोग उसी बीमारी से बीमार हैं, इसलिए खयाल पैदा नहीं होगा। हमें बीमारी का पता चलता है, क्योंकि बाकी लोग स्वस्थ होते हैं और हम बीमार हो जाते हैं। चूंकि सारी दुनिया बाहर की बीमारी से पीड़ित है, इसलिए पता नहीं चलता हमें।

एक राजधानी में ऐसा हुआ था। एक दोपहर एक जादूगर उस राजधानी में आया, और उसने एक पुड़िया उस राजधानी के कुएं में छोड़ दी। और कहा कि अब जो भी इस कुएं का पानी पीएगा, वह पागल हो जाएगा। उस राजधानी में दो ही कुएं थे। एक नगर की आम जनता का कुआं था, और एक राजा के महल का। मजबूरी थी, प्यासा कोई कब तक रहता। जान कर भी उस कुएं के जहर को पीना पड़ा। सारा गांव सांझ होते-होते पागल हो गया। सिर्फ राजा, उसका वजीर, उसकी रानी पागल नहीं हुए थे। उनका अपना अलग कुआं था।

लेकिन सांझ को बड़ी मुसीबत खड़ी हो गई। सारे गांव के लोगों ने सभा की, और वे सारे लोग ये विचार करने लगे कि ऐसा मालूम होता है, राजा का दिमाग खराब हो गया है। क्योंकि सारा गांव तो पागल हो गया था, इसलिए उस सारे गांव को राजा ही पागल मालूम पड़ रहा था। जो कि बिल्कुल स्वाभाविक था। गांव तो पागल नहीं मालूम पड़ता था, क्योंकि वह सभी लोग पागल थे। राजा अजीब मालूम पड़ता था, अलग मालूम पड़ता था। गांव के लोगों ने कहाः ऐसे राजा को गद्दी से हटाना पड़ेगा। मालूम होता है, राजा का दिमाग खराब हो गया है।

राजा बहुत घबड़ाया। उसने अपने वजीर को कहा कि मैं क्या करूं अब? उस वजीर ने कहाः एक ही रास्ता है, हम भी उसी कुएं का पानी पी लें। और वे भागे हुए उस कुएं पर गए, क्योंकि थोड़ी भी देर हो जाए तो जनता पागल हो चुकी थी। बहुत कठिन मामला था। उन्होंने कुएं पर जाकर पानी पीआ। उस रात उस राजधानी में जलसा मनाया गया। और गांव के लोगों ने गीत गाए, नृत्य नाचे और भगवान को धन्यवाद दिया कि हमारे राजा का दिमाग ठीक हो गया।

हम भी बाहर के कुएं का पानी पीकर सब पागल हैं। और इसलिए किसी को भी दिखाई नहीं पड़ता। बल्कि अगर हमारे बीच कभी कोई स्वस्थ आदमी आ जाए जिसने हमारे कुएं का पानी नहीं पीआ है, कभी-कभी भूल-चूक से ऐसे आदमी आ जाते हैं जिनका अपना कुआं है, और हमारे कुएं का पानी नहीं पीते। वे हमको पागल मालूम होते हैं। महावीर को हम पागल समझते हैं, बुद्ध को पागल समझते हैं, क्राइस्ट को पागल समझते हैं, गांधी को पागल समझते हैं। वे हमें बिल्कुल पागल मालूम होते हैं। उनकी बातें हमारी समझ में नहीं पड़तीं कि ये लोग क्या कह रहे हैं? ये क्या बातें कर रहे हैं?

लेकिन एक ही सबूत काफी है सोच लेने के लिए कि जिन लोगों को हमने पागल समझा है--बुद्ध को, महावीर को, क्राइस्ट को--वे लोग बड़े अति आनंद से भरे हुए थे। उनके जीवन में कोई दुख की रेखा न थी। उनकी आंखों में एक रोशनी थी, उनके हृदय में एक गीत था, उनके जीवन में एक सुगंध थी--जो हमारे जीवन में नहीं है। न हमारी आखों में रोशनी है, न हमारे हृदय में गीत है, न हमारे प्राणों में कोई आह्लाद है, न हमारे जीवन में कोई संगीत है; हैं चिंताएं, है दुख, है पीड़ा, उदासी, ऊब, यह सब है हमारे जीवन में।

तो अगर वे पागल भी हों, तो भी मैं कहूंगाः उन्हीं जैसा पागल सारी दुनिया को हो जाना चाहिए। और हम अगर ठीक भी हों, तो मैं कहूंगा कि यह ठीक होना बड़ी बीमारी है। दिखाई नहीं पड़ता है, क्योंकि आस-पास सभी लोग वैसे हैं।

इसलिए मैं पहली बात तुमसे यह कहूंगाः जीवन में दुख और चिंता और पीड़ा जिन बातों से बढ़ती हो, तनाव और अशांति और बेचैनी और टेंशन जिनसे पैदा होता हो, उनसे थोड़ा सावधान होना, सचेत होना। और उस मार्ग को खोजने की कोशिश करना, जहां शांति घनीभूत होती हो। प्राण विश्राम को उपलब्ध होते हों। मौन, चुप हो जाना। उस दिशा को खोजना, जहां भीतर जाने का मार्ग मिलता हो। यह हो सकता है।

बाहर की दिशा का सूत्र हैः एंबीशन, महत्वाकांक्षा। हम सबको वही सिखाया जा रहा है। पहली कक्षा में बच्चे को हम भर्ती करते हैं, और उसको कहते हैं कि पहले आना, पहले नंबर आना। जहर डालना हमने शुरू कर दिया। अब यह जिंदगी भर पहले आने की कोशिश करेगा। धन कमाएगा तो सबसे ज्यादा मैं कमाऊं, मकान बनाएगा तो सबसे ऊंचा मेरा हो, कुर्सी बनाएगा तो सबसे ऊंची मेरी हो--दिल्ली तक पहुंचे, यहीं न रह जाए। कोशिश करेगा, इसकी सारी दौड़ यह होगीः मैं पीछे न रह जाऊं, मैं आगे हो जाऊं। मैं आगे हो जाऊं।

और तुम्हें पता है, आज तक कोई आदमी कभी आगे पहुंच पाया है? आज तक पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में एक भी आदमी ने यह नहीं कहा, मैं आ गया सबके आगे। जब भी किसी ने पाया तो पाया कुछ लोग उसके भी आगे हैं। जब दस हजार साल के अनुभव से कोई आदमी नहीं कह सका कि मैं आ गया आगे, अब मुझे आगे और जाने को कोई जगह नहीं। इसका मतलब क्या है?

इसका मतलब है कि शायद हम एक चक्कर में खड़े हैं जिसमें कोई आगे हो नहीं सकता। हम एक गोल घेरे में खड़े हुए दौड़ रहे हैं। हरेक को मालूम होता हैः मेरे से आगे कोई है, मेरे से पीछे कोई है। वह आगे होने की कोशिश करता रहता है, कोशिश करता है। लेकिन कितनी ही कोशिश करता है, पाता है कि फिर भी आगे कोई

है। फिर भी पीछे कोई है। कोई आदमी कभी आगे नहीं पहुंच पाता। एक गोल घेरे में आदमी दौड़ रहा है। और हम बचपन से उसे सिखाते हैं, आगे हो जाओ। इस दौड़ में वह पड़ जाता है। फिर सारा जीवन नष्ट हो जाता है इस आगे होने की दौड़ में।

क्राइस्ट ने एक वचन कहा है, जो बहुत अदभुत है। क्राइस्ट ने कहा हैः धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। बड़ी अजीब बात है! हमारी शिक्षा से तो बिल्कुल उलटी है। इसीलिए तो हम कहते हैं कि क्राइस्ट पागल रहा होगा। जभी तो हमने सूली पर लटका दिया ऐसे आदमी को। अगर क्राइस्ट हमारे स्कूलों में आ जाए और बच्चों को समझाने लगे कि देखो, धन्य है वह बच्चा जो अंतिम होने में समर्थ है। तो हम कहेंगे, निकालो इसको बाहर, सारी शिक्षा गड़बड़ हो जाएगी, सारी दौड़ खराब हो जाएगी। यह तो नीचे का आधार खींचे ले रहा है। लेकिन मैं यही बात तुमसे कहने आया हूं।

जीवन में अंतिम खड़े होने की सामर्थ्य बड़ी आध्यात्मिक उपलब्धि है। दूसरे के आगे खड़ा होना सिर्फ अहंकार है, सिर्फ ईगो है। सिर्फ कि मैं बड़ा हूं। और जिस आदमी को यह खयाल पैदा हो जाता है कि मैं बड़ा हूं, मुझे बड़ा होना है, मुझे आगे होना है; वह जीवन भर ज्वर से ग्रस्त हो जाता है। जीवन भर फिर उसे एक बुखार घेरे रहता है, आगे होने का बुखार। फिर न वह सोता है, न जागता है। फिर वह दौड़ता ही रहता है। एक नशा है, जो पकड़े रहता है।

लेकिन जो आदमी पीछे खड़े होने में समर्थ हो जाता है, उसके जीवन का सारा बुखार चला जाता है। वह शांत हो जाता है, और स्वस्थ हो जाता है। लेकिन तुम कहोगी कि अगर हम आगे जाने की दौड़ छोड़ दें तब तो हम सीखना ही बंद हो जाएं। हम गणित सीखते हैं क्योंकि पड़ोसी से आगे निकलना है, हम संगीत सीखते हैं क्योंकि पड़ोसी से आगे निकलना है। अगर आगे नहीं निकलना है तब तो फिर सारी दौड़ बंद हो जाएगी।

नहीं, दौड़ बंद नहीं होगी। एक नई दौड़ शुरू होगी। अभी तुम्हें संगीत सीखना होता है तो तुम्हें पड़ोसी के प्रति ईर्ष्या जगानी पड़ती है कि मैं उससे आगे निकल जाऊं। तो संगीत तो तुम सीखती ही हो, साथ ही ईर्ष्या भी सीखती हो। एक दिन संगीत तो भूल जाता है, ईर्ष्या शेष रह जाती है; गणित तो भूल जाता है, ईर्ष्या शेष रह जाती है; भूगोल तो भूल जाता है, ईर्ष्या शेष रह जाती है। सारे सर्टिफिकेट तो स्कूल में पड़े रह जाते हैं, और जिंदगी में ईर्ष्या रह जाती है। और वह ईर्ष्या फिर दौड़ाती है, और दूसरों को दुख दिलवाती है।

पर हम ईर्ष्या के बल पर ही अभी सिखाते रहे हैं। हम कहते हैं, आगे होने की दौड़ में बच्चे के अहंकार को हम चोट पहुंचाते हैं कि तुम पीछे मत रह जाना। देखो, दूसरा बच्चा तुमसे आगे निकला जा रहा है। उसके अहंकार को चोट लगती है। वह भी आगे होने की कोशिश में लग जाता है। ऐसा हम फीवर पैदा कर देते हैं बच्चों में। फिर वे दौड़ने लगते हैं। और जीवन भर दौड़ते रहते हैं, और गिर जाते हैं। मर कर वह फीवर फिर उनका पीछा नहीं छोड़ती, वह बुखार उनके पीछे लगा रहता है। क्या और कोई रास्ता नहीं हो सकता है। महत्वाकांक्षा जीवन को ज्वरग्रस्त करने का मार्ग है। फिर क्या और कोई रास्ता नहीं हो सकता?

रास्ता है। वह रास्ता है प्रेम का, महत्वाकांक्षा का नहीं। संगीत से प्रेम सिखाएं, दूसरे संगीत सीखने वाले से प्रतिस्पर्धा नहीं। गणित से प्रेम सिखाएं, दूसरे गणित के विद्यार्थी से प्रतियोगिता नहीं। मैं संगीत ऐसे भी तो सीख सकता हूं कि मुझे संगीत से प्रेम है। और तब मैं किसी दूसरे से आगे नहीं निकलना चाहता हूं। तब मैं अपने से ही रोज आगे निकलना चाहता हूं। आज जहां मैं था, कल मैं उसके आगे जाना चाहता हूं। किसी दूसरे के मुकाबले नहीं, अपने मुकाबले में। रोज अपने को ही अतिक्रमण कर जाना चाहता हूं। अपने पार हो जाना

चाहता हूं। जहां कल सूरज ने मुझे पाया था, आज का उगता सूरज मुझे वहां न पाए। मेरा प्रेम मेरी एक गहन यात्रा बन जाता है।

निश्चित ही संगीत प्रेम से सीखा जा सकता है, गणित भी। और मैं तुमसे कहूं, दुनिया में जिन्होंने सच में संगीत जाना है, उन्होंने प्रेम से जाना है। महत्वाकांक्षा से किसी ने भी नहीं। जिन्होंने दुनिया में गणित की खोजें की हैं, उन्होंने गणित के प्रेम से की हैं। किसी की प्रतिस्पर्धा के कारण नहीं।

हमारे भीतर खोज लेना जरूरी है प्रेम को, जगा लेना जरूरी है प्रेम को। प्रेम के केंद्र पर जो शिक्षा होगी, वह बाहर ले जाने वाली नहीं होगी। वह भीतर ले जाने वाली हो जाएगी। और महत्वाकांक्षा, एंबीशन के केंद्र पर जो शिक्षा होगी, वह बाहर ले जाने वाली होगी। महत्वाकांक्षा के केंद्र पर घूमती शिक्षा दूसरों से ईर्ष्या सिखाएगी, प्रेम के केंद्र पर घूमती शिक्षा खुद के विकास में ले जाएगी। ये दोनों बड़ी अलग बातें हैं। प्रेम पर शिक्षा को केंद्रित करना है। तब जो हम सीखेंगे, वह तो हम सीखेंगे ही, साथ ही हमारा प्रेम भी विकसित होगा।

अगर एक व्यक्ति संगीत को प्रेम करना सीख ले तो संगीत तो सीखेगा ही और स्मरण रहे, जो प्रेम में सीखा जाता है, वही केवल सचमुच सीखा जाता है। बाकी सचमुच नहीं सीखा जाता। संगीत तो वह सीखेगा ही, साथ ही किनारे-किनारे प्रेम भी सीखेगा। हो सकता है एक दिन संगीत भूल भी जाए, लेकिन प्रेम पीछे रह जाएगा। जो उसके जीवन को आंतरिकता से भरेगा।

प्रेम भीतर जाने का मार्ग है। महत्वाकांक्षा, एंबीशन बाहर जाने का मार्ग है। अगर, इसीलिए तो जब भी हम प्रेम में होते हैं, तब हमें आनंद अनुभव होता है। क्या वजह है कि प्रेम में हमें आनंद अनुभव होता है? प्रेम में आनंद इसीलिए अनुभव होता है कि प्रेम में हम अपने भीतर पहुंच जाते हैं। घृणा में, ईर्ष्या में दुख अनुभव होता है क्योंकि घृणा और ईर्ष्या में हम अपने से बाहर पहुंच जाते हैं।

आनंद है भीतर। इसलिए जो चीजें भी हमें भीतर ले जाती हैं, वे हमें प्रीतिकर मालूम होने लगती हैं। तुम एक सुबह समुद्र के किनारे खड़ी हो जाओ, और अगर समुद्र तुम्हें आनंद देता हुआ मालूम पड़े तो तुम समझ जाना कि समुद्र की लहरें तुम्हें अपने भीतर ले गईं। तुम फूलों के पास खड़ी हो जाओ, और अगर फूल तुम्हें आनंद देते हुए मालूम पड़ें तो तुम समझ लेना कि फूल तुम्हें अपने भीतर ले गए। तुम आकाश के तारों के नीचे बैठ जाओ, और अगर रात के आकाश के तारे तुम्हें आनंद देते मालूम पड़ें तो तुम समझ लेना कि तुम अपने भीतर पहुंच गईं। तुम जिसे प्रेम करो, उसका सान्निध्य अगर तुम्हें आनंद में ले जाए तो तुम समझ लेना कि तुम अपने भीतर पहुंच गईं। बिना भीतर पहुंचे कभी कोई आनंदित नहीं होता है। इसलिए जीवन में सब तरफ खोजो कि कैसे हम भीतर पहुंच जाएं।

और भीतर पहुंचने का केंद्रीय सूत्रः प्रेम है।

और बाहर पहुंचने का केंद्रीय सूत्रः घृणा है।

महत्वाकांक्षा घृणा का रूप है, ईर्ष्या घृणा का रूप है। इसलिए किसी से स्पर्धा मत करना। स्पर्धा ही करनी हो तो खुद से करना। किसी दूसरे के आगे निकलने की कोशिश मत करना। आगे ही निकलना हो तो अपने से आगे निकलना। और जो तुम सीख रही हो, उसे केवल इसलिए मत सीखना कि पड़ोस के लोग भी सीख रहे हैं। उसे इसलिए ही सीखना कि वह तुम्हारा प्रेम है। तुम्हारा अपना आनंद है। जिस दिन तुम्हारी शिक्षा तुम्हारा प्रेम बन जाएगी, उस दिन तुम्हारी शिक्षा तुम्हें भीतर ले जाने में समर्थ हो जाएगी। सारी दुनिया के शिक्षकों, विचारशील लोगों के सामने यही सवाल है कि हम शिक्षा को मनुष्य को भीतर ले जाने का द्वार कैसे बना सकें?

प्रेम से वह द्वार बन सकता है। और जब कोई व्यक्ति अपने भीतर पहुंचता है--वहीं, उसी मंदिर में परमात्मा का निवास है। जब कोई अपने भीतर पहुंचता है, तब वह ऐसी संपदा का मालिक हो जाता है, जो कभी क्षीण नहीं होती। और ऐसे सुख की अनुभूति में डूब जाता हैः जो कि जीवन की कृतार्थता है, धन्यता है, उपलब्धि है, जीवन का अर्थ है।

सारी दुनिया में यही प्रश्न है सबके सामने कि हम मनुष्य को उसके भीतर ले जाने वाला कैसे बना सकें? तुम्हारे जीवन की यात्रा शुरू हुई है। बहुत डर है कि तुम भी उसी ज्वर से ग्रस्त हो जाओगी जिससे सारे लोग ग्रस्त रहे हैं। इसके पहले कि तुम्हारे हृदय में घृणा का, ईर्ष्या का, अहंकार का, महत्वाकांक्षा का बीजारोपण हो, तुम बहुत सचेत होकर प्रेम की दिशा में कदम उठाना। जो भी सीखो, उसे प्रेम से सीखना। और स्मरण रखना, निरंतर इस बात की खोज करना कि मैं जो कर रही हूं, वह मेरी घृणा से, ईर्ष्या से तो नहीं आ रहा है। मेरे प्रेम से आ रहा है। अगर ये तुम्हें स्मरण रहे, अगर यह तुम्हारे ध्यान में हो, तो धीरे-धीरे तुम्हारे कदम रोज-रोज प्रेम के अभ्यासी होते चले जाएंगे। तब तुम्हारे जीवन में जो भी होगा, वह प्रेम से होगा।

और प्रेम से जो भी होगा, वह अंतर की तरफ ले जाने वाला हो जाता है। प्रेम की सीढ़ियां भीतर पहुंचती हैं। इसीलिए कहा हैः प्रेम परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग है। प्रेम ही परमात्मा है। और जो शिक्षा हृदय को प्रेम से भर दे समस्त जीवन के प्रति, समस्त लोगों के प्रति, वह शिक्षा धर्म हो जाती है। शिक्षा धर्म होनी चाहिए।

लेकिन शिक्षा के धार्मिक होने का मतलब यह नहीं है कि गीता पढ़ाई जाए; बाइबिल पढ़ाई जाए; न ही शिक्षा के धार्मिक होने का मतलब यह है कि जय गणेश, जय गणेश करवाया जाए; न ही शिक्षा के धार्मिक होने का यह मतलब है कि सत्य, अहिंसा के पाठ तुम्हें रटवा दिए जाएं। शिक्षा के धार्मिक होने का मतलब यह हैः तुम्हारा हृदय प्रेम से भर जाए। और वह कैसे भरेगा? अगर तुम ईर्ष्या और महत्वाकांक्षा में जीओगी, वह प्रेम से कभी नहीं भर सकता है। प्रेम से भरने का अर्थ है, तुम जो भी सीखो... ।

रवींद्रनाथ ने गीत लिखे। किसी ने पूछा रवींद्रनाथ को, क्यों लिखे हैं ये गीत? रवींद्रनाथ ने कहाः मेरा प्रेम नहीं मान सका बिना लिखे। मेरे हृदय में उठे भाव, और मेरे प्रेम ने कहा कि सारी दुनिया को बांट दूं। रवींद्रनाथ ने यह नहीं कहा कि दूसरे कवियों से मुझे आगे निकलना है, इसलिए लिखे मैंने ये गीत।

विनसेंट वानगॉग एक बहुत बड़ा डच चित्रकार हुआ। उससे किसी ने पूछा कि तुम क्यों बनाते हो ये चित्र, क्यों ये पेंटिंग्स करते हो? उसने कहाः चूंकि मुझे चित्र बनाने से प्रेम है। उसका एक भी चित्र बिका नहीं जीवन में। आज तो उसके एक-एक चित्र की कीमत भी चार-चार, पांच-पांच लाख रुपया है। लेकिन उसकी जिंदगी में उसका एक भी चित्र नहीं बिक सका। उसके घरवालों ने कहाः तुम पागल हो, किसलिए चित्र बनाते हो? कोई चार पैसे में खरीदने को राजी नहीं है। उसने कहाः मैंने इन्हें बनाने में वह मूल्य पा लिया, वह आनंद पा लिया जो मैं चाहता था। अब इनसे कुछ भी पाने का सवाल नहीं है। मैंने इन्हें बनाया, यह मेरा आनंद था। यह मेरी खुशी थी, यह मेरा प्रेम था। मैंने इनसे पा लिया, जो मुझे पाना था।

जीवन में जिन लोगों ने भी आनंद पाया है, वे वही लोग हैं जिन्होंने प्रेम से कुछ किया है। जो लोग प्रेम से कुछ भी नहीं करते हैं, और सिर्फ ईर्ष्या से करते हैं; वे लोग कभी जीवन में आनंद को नहीं पा सकते। उनके हाथ खाली रह जाएंगे। प्रेम के अतिरिक्त हाथों को भरने वाली और कोई संपत्ति नहीं है। क्योंकि प्रेम भीतर पहुंचा देता है। और प्रेम उस अंतस के केंद्र पर पहुंचा देता है जहां, जहां परमात्मा का आवास है।

तो मैं यह निवेदन करूंगा अंत मेंः तुम्हारा जीवन प्रेम की एक खोज बने, महत्वाकांक्षा की एक दौड़ नहीं; तुम्हरा जीवन आनंद की एक यात्रा बने, ईर्ष्या की विक्षिप्तता नहीं। तुम्हारे जीवन में वह आंतरिक सौंदर्य

हो जो न केवल तुम्हें परिपूर्ण कर देगा, तुम्हें शांत और तृप्त कर देगा। बल्कि तुम्हारी सुगंध भी जिनके पास पहुंचेगी, वे भी उस आनंद के साझीदार हो जाएंगे।

लेकिन अभी तो हम बीमार और विक्षिप्त लोग हैं, जिनके चित्त में सिवाय ईर्ष्या और महत्वाकांक्षा के और कोई लपटें नहीं जलतीं। और तब हम तो दुखी होते ही हैं, हम उस दुनिया को भी बनाते हैं जो नरक हो जाती है। जमीन को स्वर्ग बनाना उन बच्चों के हाथ में है, जो अपने भीतर स्वर्ग को बना सकेंगे।

ये थोड़ी सी बातें मैंने तुमसे कहीं इस आशा में कि तुम इन पर सोचोगी। हो सकता है कोई बात तुम्हें ठीक मालूम पड़े। और वह ठीक बात तुम्हारी जिंदगी को बदलने का कारण हो जाए। मेरे कहने से तुम्हारी जिंदगी नहीं बदल सकती। तुम्हें दिखाई पड़ जाए कोई सत्य, तो ही तुम्हारी जिंदगी बदल सकती है। मैंने जो कहा, उसे मान मत लेना। उसे सोचना-विचारना, अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसना। उसमें जो फिजूल मालूम पड़े, उसे बिल्कुल फेंक देना। और सारी खोज-बीन और छान-बीन के बाद अगर तुम्हें एक छोटा सा टुकड़ा भी उसमें ठीक मालूम पड़ जाए, तो वह छोटा सा टुकड़ा तुम्हारे भीतर बीज बन जाएगा और तुम्हारी जिंदगी को बदल देगा।

परमात्मा करे तुम्हारी जिंदगी प्रेम की जिंदगी बने, ईर्ष्या और घृणा की नहीं। घबड़ा चुके हैं हम जमीन पर ईर्ष्या से भरे हुए लोगों से। एक ऐसे मनुष्य की जरूरत है, जो प्रेम से भरा हो।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।